वैदिक विवाह
संस्कार विधिः

ओ३म्

वैदिक विवाह संस्कार-विधिः

लेखक—

श्री महेन्द्र कुमार शास्त्री

वैदिक-प्रकाशन

२८०४, गली आर्य समाज, बाजार सीताराम

दिल्ली-११०००६

प्रथम संस्करण] अगस्त, १९८८ [मूल्य १५) रु०

प्रकाशक—

राजपालसिंह शास्त्री

अध्यक्ष, वैदिक-प्रकाशन,

२८०४-गली आर्य समाज, बाजार सीताराम,

दिल्ली-११०००६

फोन : २६८२३१—५१३२०६

मूल्य १५) रुपये

प्रथम संस्करण—अगस्त ८८

७१०८, जागृति प्रिन्टर्स, गली पहाड़ वाली, पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

आमुख

चिरकाल से अनुभव कर रहा था कि "विवाह पद्धति" पृथक् से अपनी अनेक विशेषताओं के साथ लिखी जाय और कर्मकाण्डी विद्वानों, पुरोहितों के लिए अनुपम भेंट प्रस्तुत कर सकूँ। इन्हीं विचारों को साकार रूप में देने के लिए प्रकाशक की खोज कर रहा था। पानी के बुलबुले की भांति विचार बनते और बिगड़ते रहते थे। इसी बीच पं० राजपाल सिंह शास्त्री अध्यक्ष, मधुर-प्रकाशन से सम्पर्क हुआ। आपने मेरे विचारों को साकार और सार्थक करने का आश्वासन दिया और आज यह "वैदिक विवाह संस्कार विधि" आपके हाथों में है।

इससे आर्य विद्वान् कितना लाभान्वित हो सकेगा। यह तो आप लोग ही बतायेंगे। इसमें जो त्रुटियां या दोष होंगे, उन्हें देखकर आप लिखिये। यथाशक्ति संशोधन करके द्वितीय संस्करण में आपके समक्ष प्रस्तुत कर सकूंगा।

इसमें अनेक विद्वज्जनों, कवियों की कृतियों से सारभूत ग्रहण किया है। उन सभी का हृदय से आभारी हूँ।

—विदुषामनुचरः
महेन्द्र कुमार शास्त्री
सिद्धान्त भूषण

वैदिक विवाह संस्कार विधिः

अनुक्रमणिका

गृहाश्रम और विवाह

ऋषियों तथा मनीषियों की दृष्टि में

'गृहाश्रम' उसको कहते हैं कि जो ऐहिक और पारलौकिक सुख-प्राप्ति के लिये विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना और सत्य धर्म में ही अपना तन, मन, धन लगाना तथा धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करनी।

'विवाह' उसको कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत, विद्या-बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण, कर्म, स्वभावों से तुल्य परस्पर प्रीति-युक्त होके निम्नलिखित प्रमाणं सन्तानोत्पत्ति और अपने-अपने वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होता है। इसमें प्रमाण—

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात्॥१॥

[अ० कां० १४। सू० १। मं० ९]

(सोमः) सुकुमार शुभगुणयुक्त (वधूयुः) वधू की कामना करनेहारा पति तथा वधू पति की कामना करनेहारी (अश्विना) दोनों ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त (अभवत्) होवें. और (उभा)

टिप्पणी—विशेष दायित्व जिम्मेवारी को धारण करने का नाम विवाह है। वि+वाह विशेष पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं सार्वभौमिक दायित्व निभाने के लिये जिस प्रक्रिया से व्रत लिया जाय।

दोनों (वरा) श्रेष्ठ तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले (आस्ताम्) होवें. ऐसी (यत्) जो (सूर्याम्) सूर्य को किरणवत् सौन्दर्य गुण-युक्त (पत्ये) पति के लिये (मनसा) मन से (शंसन्तीम्) गुण कीर्तन करने वाली वधू है, उसको पुरुष और इसी प्रकार के पुरुष को स्त्री (सविता) सकल जगत् का उत्पादक परमात्मा (अददात्) देता है। अर्थात् बड़े भाग्य से दोनों स्त्री पुरुषों का, जो कि तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव हों, जोड़ा मिलता है ।।१।।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ।।२।।

[अ० कां० १४। सू० १। मं० २२]

हे स्त्री और पुरुष ! मैं परमेश्वर आज्ञा देता हूं कि जो तुम्हारे लिये पूर्व विवाह में प्रतिज्ञा होगी। जिसको तुम दोनों स्वीकार करोगे। (इहैव) इसी में (स्तम्) तत्पर रहो, (मा, वियौष्टम्) उस प्रतिज्ञा से वियुक्त मत होओ। (विश्वा-मायुर्व्यश्नुतम्) ऋतुगामी होके वीर्य का अधिक नाश न करके सम्पूर्ण आयु जो १०० सौ वर्षों से कम नहीं है, उसको प्राप्त होओ और पूर्वोक्त धर्म रीति से (पुत्रैः) पुत्रों और (नप्तृभिः) नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) क्रीड़ा करते हुए (स्वस्तकौ) उत्तम गृह वाले (मोदमानौ) आनन्दित होकर गृहाश्रम में प्रीतिपूर्वक वास करो ।।२।।

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेनत्व न्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ।।

मनु० ३,७८

सर्वेषामपि चैतैषां वेदस्मृतिविधानतः ।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः सः त्रीनेतान् विभर्ति हि ।।

मनु० ६,८६

"अन्न, वस्त्रादि दान से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी का पालन-पोषण गृहस्थ ही करता है इसलिए वह ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है।" —मनु०

जिस आश्रम की ओर तुमने मोड़ लिया है, वह आश्रम महिमा में सबसे महान् है। ऋषियों द्वारा तोले जाने पर इसी आश्रम का पलड़ा शेष तीनों आश्रमों की तुलना में बराबर बैठता है। आश्रमांस्तुलया सर्वान् धृतानाहुर्मनीषिणः, एकतश्च त्रयो राजन् गृहस्थाश्रम एकतः। महा०

गृहस्थ के शरीर का आधा उत्तम भाग पत्नी है। पत्नी से बढ़कर अधिक श्रेष्ठ मित्र संसार में कोई नहीं है।" —वेदव्यास

जो मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता है वह प्रयत्न से गृहस्थ आश्रम को धारण करे। प्रियवचन बोलेंगे तो गृहस्थ के भार को उठा सकते हैं और असंख्य कार्यों की सिद्धि कर सकते हैं। —दयानन्द

विवाह इन्द्रिय-सुख के निमित्त नहीं वरन् मानव-वंश को आगे चलाने के लिए है, विवाह का भारतीय आदर्श यही है। समाज में उसी प्रकार के विवाह का प्रसार होता है, जिसमें समाज का अधिक-से-अधिक कल्याण साधन हो सके। अतः पति-पत्नी को समाज और देश के कल्याण-साधन के निमित्त अपने व्यक्तिगत आनन्द और सुख को तिलांजलि देने को सदा तत्पर रहना चाहिए। —विवेकानन्द

विवाह का आदर्श दो हृदयों की प्रेम-भावना तक ही सीमित नहीं है। यह तो विश्वव्यापी प्रेम के मार्ग में एक पड़ाव-मात्र है।

विवाह कोई उद्देश्य नहीं, यह तो साधन-मात्र है! काम-

विकार की तृप्ति का साधन नहीं, बल्कि पति के व्यक्तित्व में अपना व्यक्तित्व विलीन करके निःस्वार्थ और निरहंकारी सेवा का आदर्श पाने का साधन है।

पाशविक विषय-वासना की पूर्ति के लिए किया हुआ विवाह अपवित्र सम्बन्ध है।

अपनी सारी शक्ति के साथ मैं कहता हूं कि पति-पत्नी के बीच भी काम-जन्य आकर्षण अस्वाभाविक है। विवाह का उद्देश्य पति-पत्नी के हृदय को हीन वासनाओं से शुद्ध करके उन्हें भगवान् के निकट ले जाना है।

विवाह आत्म-विकास की परिपूर्णता के लिए होता है। यह पूर्णता अपने अनुरूप फल पैदा करके ही आती है। तभी विवाह का फल उत्तम सन्तान है। यह ऐसा पितृ-ऋण है, जो देश-जाति के लिए कल्याणकारक बालक उत्पन्न करके ही चुकाया जाता है। सन्तति-प्राप्ति को छोड़कर किसी दूसरे प्रयोजन से किया हुआ विवाह, विवाह नहीं है।

—मोहन दास कर्मचन्द गांधी

मानव-सृष्टि में नारी का आविर्भाव बहुत प्राचीन है। मनुष्य-समाज में नारी-शक्ति को आद्या शक्ति कहा जा सकता है। यही वह शक्ति है, जो जीव-लोक में प्राण को वहन करती है और उसका पोषण करती है।

पृथ्वी को जीवों के रहने योग्य बनाने के लिए प्रकृति को ढलाई-पिटाई करते अनेक युग बीत चुके थे। यह काम अभी आधा ही हुआ होगा कि प्रकृति ने जीवों की सृष्टि करना आरम्भ कर दिया और धरती पर वेदना उत्तर आई। प्रकृति ने प्राण-साधना की वेदना की वही आदिम वृत्ति नारी के रक्त

और हृदय में भर दी है। उसने जीव के पालन के समूचे प्रवृत्ति-जाल को प्रबलतापूर्वक नारी के मन और देह के प्रत्येक तन्तु के साथ जोड़ दिया है। उक्त-प्रवृत्ति को स्वभावतः चित्त-वृत्ति की अपेक्षा हृदय-वृत्ति में ही गम्भीर और प्रशस्त भाव से स्थान मिला है। नारी के भीतर की यह प्रकृति वही है, जो प्रेम, स्नेह और सकरुण धैर्य के साथ स्वयं उसे और अन्य को जकड़े रहने के लिए बन्धन-जाल बुनती है —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

पत्नी पतिव्रता और पति पत्नीव्रती होने चाहिएँ, अर्थात् एक-दूसरे के जीवन-व्रतों के साथ एकरूप होने की कोशिश करना गृहस्थ-धर्म की खूबी है।

गृहस्थाश्रम की भव्यता और दिव्यता मान्य करके भी हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि हिन्दूधर्म मुक्तिवादी है। स्त्री-पुरुषों की परस्पर उपकारिता को ध्यान में रखने के साथ दोनों की स्वयंपूर्णता और परममुक्तता, जो अत्यन्त अभीष्ट है, आँखों से ओझल नहीं होनी चाहिए। —विनोबा भावे

अथर्ववेद १४.२.१३ मन्त्र (**धाता इमं लोकं अस्यै दिदेश**) में विधाता ने यह पति का स्थान इस वधू के लिए निर्दिष्ट किया है, ऐसा कहा है। इसका सरल आशय यह है कि जब स्त्री या पुरुष उत्पन्न होता है, तब उसके लिए विवाह की योजना विधाता द्वारा निश्चित होती है। विधाता के सन्देश को लेकर जो चलते हैं, उनके लिए यथायोग्य धर्मपत्नी मिलती है। जो स्वयं अपना हठ बीच में लाते हैं, वे कष्टभोगी हैं। जो आजन्म ब्रह्मचर्य पालते हैं, उनका वह हेतु भी ईश्वरीय कृपा से ही सिद्ध होता है। जो विवाहेच्छुक होते हैं, उनको उचित है कि वे अपना आचरण धर्मानुकूल रखें, उत्तम सुनियमों का पालन करें और समय की प्रतीक्षा करें। विधाता के नियमानुसार

सुयोग्य वधू के साथ अवश्य सम्बन्ध होगा। धर्मानुकूल संयम-पूर्वक व्रती मनुष्य का सब योगक्षेम ईश्वरीय नियमानुसार चलता है। जिसका परमपिता एकमात्र सहायक सखा होता है, उसको किसी बात की न्यूनता नहीं होती।

—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

मनुष्य की विशेषता यह है कि उसके शरीर-धर्म भी प्राकृतिक नहीं, वरन् सांस्कृतिक होते हैं। विवाह कामोपभोग का लाइसेंस' नहीं, 'काम-संयम' का संस्कार है। इसीलिए उसका सामाजिक मूल्य है। इसीलिए यह मंगल-कार्य और शिष्टमान्य विधि है। विवाह-सस्कार काम-मूलक नहीं, प्रेम-मूलक होना चाहिए। सम्पत्ति, सम्मान, रक्षणाकांक्षा-जैसी अवान्तर अभिसंधियाँ इस परम मगल-संस्कार को अमंगल और अभद्र बना देती हैं।

विवाह में समर्पण है। उस समर्पण में पारस्परिकता है। फिर भी वर-वधू दोनों की ओर वह समर्पण निरपेक्ष है। इसी-लिए विवाह दो विशिष्ट व्यक्तियों का पुण्य संगम है। उसमें विनिमय के लिए अवसर नहीं। दोनों ओर से निरपेक्ष 'सम्प्रदान' ही है, आदान की आकांक्षा नहीं।

पुरानी परिभाषा में वैवाहिक जीवन विशिष्टाद्वैत का प्रतीक है। पति और पत्नी अपने विशिष्ट गुणों का विकास एक-दूसरे के जीवन को उन्नत और समृद्ध बनाने के लिए करते हैं। दोनों के विशिष्ट व्यक्तित्व के संयोग से दोनों का समन्वित व्यक्तित्व उदात्त और सम्पन्न होता है। यह अर्द्ध-नारीश्वर होता है तो वह भी अर्द्धनरेश्वर हो जाती है। दोनों का जीवन परस्पर भावित होकर निर्भय बन जाता है। दोनों का व्यक्तित्व एकरस न हो, तो भी समरस हो जाता है। दोनों

में परस्पर-पूरक तुल्य कर्तव्यनिष्ठा और तुल्य पराक्रम-शक्ति विकसित होती है। —दादा धर्माधिकारी

प्रजापति के सृष्टि-यज्ञ की सबसे महत्त्वपूर्ण वास्तविकता विवाह है। इसके द्वारा स्त्री-पुरुष का जो एकात्म-सम्बन्ध स्थापित होता है, वह जिस आनन्द का स्रोत है, उसकी तुलना में विश्व का और कोई अनुभव नहीं बताया जा सकता। विवाह के सदृश मन-प्राण-भूतों का सम्मिलन अन्यथा सम्भव नहीं है। विवाह सृष्टि की पूर्णता का हेतु है। वह संयम का विधान है, भोग का नहीं। स्त्री-पुरुष का पति-पत्नी-रूप में एकत्व सृष्टि की व्यवस्था का सूत्र है। उसे हम आध्यात्मिक और सामाजिक शान्ति की पराकाष्ठा कह सकते हैं। यदि सर्वात्मना स्त्री और पुरुष के तन्त्र एक-दूसरे में मिल जाते हैं तो उसका आनन्द ब्रह्मानन्द-सहोदर ही है। 'प्रजायै गृहमेधिनाम्' का मार्ग-पालन कठिन है। जो व्यक्ति केवल सुसंतति के लिए पत्नी से सम्मिलन करता है, उसे गांधीजी नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा करते थे, क्योंकि वह धर्मचर्या का अनुगामी है। 'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः' के अनुसार काम भी भगवान् का रूप है, पर भगवान् के रूप में उसकी उपासना कितनी दुरूह है, यह अनुभव से ही जाना जा सकता है। काम मानसी शक्ति का बीज है। जो उस बीज को ऋतु और क्षेत्र में प्रजा के लिए सुप्रयुक्त करता है, वही यज्ञ करता है, अन्यथा कामकामीजन तो अनेक हैं। भागवत मान्यता के अनुसार कामदेव साक्षात् विष्णु का पुत्र है और गृहस्थाश्रम सब आश्रमों का आधार है। गृहस्थाश्रम की महिमा को पवित्र बनाये रखना हमारा दायित्व है। गृहस्थ से भागकर कोई सिद्धि प्राप्त नहीं करता। शान्ति तो मन के रोग के प्रक्षालन का ही फल है। अतएब ऋषियों

ने 'आश्रमादाश्रमं गच्छेत्' के राज-मार्ग का उपदेश किया है। जितनी पूर्णता मानवीय जीवन में अपेक्षित है, उसकी उपलब्धि घर में ही सम्भव है। यह जनकादि का आदर्श ऐसा कौशल है, जिसे अनुभव में लाने का सच्चा प्रयत्न करना चाहिए।

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

हिन्दू धर्मशास्त्र ने विवाह के तीन उद्देश्य बताये हैं—१. धर्म, २. प्रजा और ३ रति। कुदरत की प्रेरणा से परस्पर रति का प्रथम स्थान आता है। उसके बाद प्रजा का। लेकिन मानव तो आत्मा को पहचानने वाला प्राणी है इसलिए वह कुदरत के क्रम को उल्टा कर धर्म को प्रधानता देता है। समाज-धर्म और आत्मोन्नति का धर्म ध्यान में रखकर ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। उसके साथ वंश-परम्परा चलाने के लिए प्रजोत्पत्ति आवश्यक है। उसमें भी प्रथम पुत्र को 'धर्म्य' कहा है। बाद की प्रजा 'काम्य' कही जाती है।

धर्म और प्रजा—इन दोनों आदर्शों को पालन करते हुए रति का प्रसाद मिल ही जाता है। इसे ईश्वर का अनुग्रह समझकर संयम के साथ उपभोग करना चाहिए। रति में मुख्य बात परस्पर निष्ठा की है। विवाह में सारा प्रयत्न साथी को सुख देने का हो। इसमें अपने को सुख मिलता ही है, उसे प्रसाद समझना चाहिए। अपने सुख का आग्रह न हो। अनुग्रह के रूप में उसको स्वीकार किया जाय।

रति में भी केवल सुख का आदर्श न हो। सुख के साथ दोनों हृदयों का ओत-प्रोत होना आवश्यक है। राजा भर्तृहरि कहते हैं :

एतत् कामफलं लोके यद् द्वयोरेकचित्तता।

इस बात का उनका आग्रह इतना उत्कट है कि एक चित्त

के बिना किये हुए काम को **'शवयो इव संगमः'** कहकर वे नापसन्द करते हैं।

—काका सा० कालेलकर

आज की नारी वही नहीं है, जो कि सौ वर्ष या, पचास वर्ष पहले थी। अर्धनारी का जमाना गया, अब नारी पूर्ण है। इसके साथ ही उसकी जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई है। उसके पथ-प्रदर्शन के लिए शिक्षाएं भी नहीं के बराबर हैं। बुद्ध के शब्दों में कहा गया है, 'अत्ताहि अत्तनो नाथो', तुम स्वयं अपने नाथ हो। इसके साथ तो यह आवश्यक है कि पत्नी अपनी गृहस्थ-सम्बन्धी जिम्मेदारियों को समझे। पति को उतनी ही आशा रखनी चाहिए, जितनी पत्नी की आशा को वह पूर्ण कर सकता है। शान्तिपूर्ण जीवन के लिए आचार्य गोवर्धन की मीठी कड़वी वाणी भी उचित है।

निष्कारणापराधं निष्कारणकलहरोष - परितोषम्।
सामान्यभरणजीवनं सुखदुःखं जयति दाम्पत्यम्॥

—राहुल सांस्कृत्यायन

विवाह जीवन में सबसे महत्त्व का पर्व है। इसे हम भारतीय संस्कार कहते हैं। एक बड़े समारोह के साथ धर्म-विधियों से यह अनुष्ठान पूरा होता है। आशय यही है कि जो युगल दाम्पत्य में एक होकर संसार-यात्रा पर आगे पग रखने वाला है, उसके पास संबल भरपूर रहे और यात्रा सुखद और सम्पूर्ण हो। संसार को सागर के समान माना गया है; इसका संतरण सहज-साध्य नहीं होता। बड़ी दुर्गम यात्रा है, लेकिन अनुभवी जन कह गए हैं कि गृहस्थ को यदि हम आश्रम रूप मानें और धर्म-पूर्वक अर्थ और काम में पुरुषार्थ की साधना करें तो इस संसार में से मोक्ष की ओर

प्रगति होती है, अन्यथा संसार जंजाल और जकड़ बनता है। धर्म का सार ईशोपनिषद् के पहले चरण में आ जाता है कि यह सब ईश्वर का है, इससे भोग-मात्र को त्याग पूर्वक लो।

—जैनेन्द्र कुमार

हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची। महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥

—अथर्ववेद

उभरता यौवन, जननेत्र हिरण्यवर्ण हों, वाणी में मधु और वक्त्र की कशा हो, हाथ में विक्रम और कौशल हो, पांवों में गति और क्रान्ति हो, जानते तथा न जानते हुये भी तमोवेध की लालसा हो, तब मानव अपने को अकेला और अपूर्ण पाकर साथी, जीवन-साथी की गवेषणा में निकलता है।

द्वन्द्वं वै वीर्यम् ॥ द्वन्द्वं वै ज्योतिः ॥

दो ही मिलकर तो शक्ति तथा प्रकाश का सृजन करते हैं। स्वर में स्वर, कन्धे से कन्धा मिलाकर, विघ्नों को चीरते हुए, जीवनाग्नि में अपनी प्राणाहुति देते हैं।

ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिवी जहाँ आधार हो; सखियों, मित्रों और सम्बन्धियों का सर्वाप्लावी स्नेह पथ का साथी हो; परस्पर उत्कट प्रीति हो; प्राण-हित और शिव-संकल्प मन के नायक हों—वहां आत्म-मंगल तथा आत्म-कल्याण क्यों प्रतिफलित न होंगे!

संकट आयें, चिन्तायें घेर लें, पर धैर्य बना रहे। और जब भी गवाक्ष में से आँख बाहर झांकें तो तारों-भरा आकाश सामने आयें, न कि क्षुद्र-नीच कर्दम-भरी संकीर्ण गलियाँ।

—डा० रघुवीर

"यदि पुरुष अपनी पत्नी से सच्चा प्रेम नहीं करता तो वह स्वामी उसका भले ही बना रहे पर उसका हृदय-सम्राट् नहीं बन सकता।"

—स्वामी श्रद्धानन्द

स्त्रीत्व का अर्थ ही मातृत्व है। यही प्रेम का आदि है, यही अन्त। घर ही इसका केन्द्र है विश्वभर की परिक्रमा के बाद सब यहीं लौटकर विश्राम पाते हैं।

—ब्राउनिंग

पति-पत्नि दो नहीं, एक हैं—एक ही रक्तमांस के। भगवान ने उन्हें एक ही सूत्र में पिरो दिया है, मनुष्य को यह उचित नहीं कि वह किसी भो अवस्था में उन्हें जुदा करे।

—बायबिल

पत्नी पति की अर्धांगिनी होती है। दोनों के भाव, विचार लक्ष्य एक हों। यही एकता परिवार की श्री-समृद्धि-सौख्य का आधार होती है।

गृह मन्दिर में सदा आनन्द और सौख्य के लिए यह कभी भी न भूलना चाहिए कि जो व्यवहार पति और पत्नी से अपने प्रति चाहता हो वहीं व्यवहार पत्नी के प्रति भी वह करे।

जैसे पत्नी का कर्त्तव्य है कि वह पति सेवा करे, वैसे ही पति का भी धर्म है कि वह सदा पत्नी के सुख का ध्यान रखे।

पति-पत्नी मन, वचन और कर्म से एक हों। उनके भाव एक हों। हृदय एक हों, मान प्रतिष्ठा एक हों और सदा अभिन्न रहते हुए एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हुए उत्कर्ष की राह पर चलते रहें।

स्त्री-पुरुष जीवन को ऐसा बनावें कि बड़े उनसे प्यार करें, छोटे उनका आदर करें, समाज सत्कार करे, "धर्म" पथप्रदर्शक हो, "अर्थ" सहचर हो और "मोक्ष" लक्ष्य बने।

पति-पत्नी परस्पर मित्र, साथी-संगी होते हैं, इसलिये इनको परस्पर स्नेह के साथ-साथ परस्पर सम्मान, आदर भाव को भी अपनाना चाहिए।

दोनों को हिमालय से महान्, समुद्र से धैर्यवान्, आकाश से ज्योतिर्मान, निश्चय-व्रती, तपस्वी और अतुल शक्तिमान् बनना चाहिए।

फिर जीवन में पद, प्रतिष्ठा, धन-वैभव कर्त्तव्य से विमुख न कर सकेंगे और यदि कभी संसार-चक्र की गति में कोई बाधा भी उपस्थित होगी तो इनका धैर्य अवलम्ब बनकर सहायक सिद्ध होगा।

जीवन-व्रत की यह प्रतिज्ञाएं केवल प्रणय-बन्धन की रस्म न होकर जीवनचर्य्या के व्यवहार में ओत-प्रोत होकर निर्देशक एवं पथ-प्रदर्शक रहें। इस तरह जीवन बनाने से सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त होंगे, सफलता सदा साथ रहेगी, आशा और उत्साह उल्लास देंगे।

एक प्राण हो, एक मन, अमित प्रेम उत्कर्ष।
भारतीय दाम्पत्य का, यह उज्ज्वल आदर्श ॥
जिस कुल में निज पति से पत्नी,
पत्नी से पति रहे प्रसन्न।
वह कुल हो जाता है निश्चय,
विद्या, बल, वैभव सम्पन्न ॥

गृहस्थाश्रम केवल भोग भूमि नहीं। वस्तुतः यह आश्रम भोग और योग, प्रवृत्ति और निवृत्ति, आदान और प्रदान,

आत्महित और परहित, अभ्युदय और निःश्रेयस् के समन्वय साधन की साधना-भूमि है। सामंजस्य, समन्वय परस्पर समर्पण ही वैवाहिक जीवन की सफलता का मुख्य आधार है।

संयोगः श्रेष्ठदपत्योर्महा-पुण्यैरवाप्यते ।
यत्रान्योन्यसुखासक्तौ द्वावेकहृदये स्थितौ ॥

वैवाहिक जीवन में श्रेष्ठ पति-पत्नी का संयोग महापुण्य का फल है, उसमें पति-पत्नी एक हृदय होकर परस्पर सुख सम्पादन में ही रत रहते हैं। दोनों का एक हृदय होता है। जीवन सरसता और मधुरता का पर्याय बन जाता है।

पक्षी यथा स्वपक्षाभ्यां विपदुल्लंघने क्षमः ।
अन्योन्यपक्षाश्रयतो दम्पती सुखमाप्नुतः ॥

जैसे पक्षी अपने दोनों पंखों से आकाश को पार करने में समर्थ हो जाते हैं वैसे ही पति-पत्नी भी दोनों पक्षों का आश्रय लेकर जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं।

धन्योऽसौ आश्रमो यत्र दम्पती परहेतवे ।
परस्पर सुखायापि स्यातामात्मसमर्पकौ ॥

वह गृहस्थ आश्रम धन्य है, जिसमें पति और पत्नी परस्पर सुख और परस्पर हित के लिए परस्पर आत्मसमर्पण कर देते हैं और घर में आये हुए लोगों के सुख और हित के प्रति भी सतत तत्पर रहते हैं।

चक्रे द्वे रथ एकः स्यात् नेत्रे द्वे लक्ष्यमेककम् ।
कपाटौ द्वौ द्वारमेकं, द्वौ देहौ हृदयैकता ॥

जैसे रथ के चक्र दो होने पर भी रथ एक है, नेत्र दो होने पर भी दृष्टि और लक्ष्य एक ही रहता है, किवाड़ दो होने पर भी द्वार एक ही रहता है वैसे ही पति-पत्नी में देह दो होने पर भी हृदय की एकता रहती है।

विद्युत्तारौ शक्तिमन्तौ पृथक् चेन्निष्क्रियावुभौ।
यत्रापिस्यात्तयोर्योगः, स क्रियावान् भवेद्ध्रुवम् ॥

बिजली के दोनों तार जब मिले रहते हैं तभी उनमें शक्ति का प्राकट्य होता है, यदि वे पृथक्-पृथक् कर दिये जायें तो निष्क्रिय हो जाते हैं। उसी प्रकार गृहस्थ में यदि पति-पत्नी एकचित्त होकर रहते हैं तो सभी कार्यों का सफलता पूर्वक सम्पादन करने की शक्ति भी उनमें रहती है।

वीणातन्त्र्यौ यत्र युते, मधुरं तत्र गीयते।
दम्पत्योरपि हृत्तन्त्र्यौ संगते मधुगायतः ॥

वीणा के तार यदि मिलकर बजें तो जैसे गीत मधुर होता है ऐसे ही यदि दम्पति के हृदय को वीणा के तार मिलकर बजें तो गृहस्थ-जीवन मधुर संगीत का रूप ले लेता है।

विधि

आस्तिक जनों के लिए शुभ कार्य के आदि में स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना परम आवश्यक–

भारतवर्ष के सभी कर्मकाण्डी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं और व्यवहार में बरतते हैं कि प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में प्रभु की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करनी चाहिये। कई विद्वज्जन इसको गणेशपूजन भी कहते हैं। गणेश परमात्मा का ही नाम है। गण समूह को कहते हैं, विश्व भर में जितनी भी

जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज योनियां हैं, उन सभी पर परमात्मा का शासन है सभी के शरीरों का निर्माण एवं उनके उपभोग की सामग्री परमपिता परमेश्वर ही जुटाते हैं और रक्षा भी करते हैं। इसलिये—

स्तुतिः—ईश्वर के गुण ज्ञान कथन, श्रवण तथा सत्य भाषण करना है। वह स्तुति कहाती है

स्तुति का फलः—जो गुण ज्ञान आदि के करने से गुण वाले पदार्थों की प्राप्ति होती है, वह स्तुति का फल कहाता है।

प्रार्थनाः—अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर की सहायता लेने को प्रार्थना कहते हैं।

प्रार्थना का फलः—अभिमान का नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुण ग्रहण करने में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति का होना प्रार्थना का फल है।

उपासनाः—जिससे ईश्वर ही के परमानन्द रूप में आत्मा को मग्न करना होता है उसको तथा ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने को करना, ईश्वर को सर्वव्यापक ज्ञान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा ही निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् कर्मोपासना कहाती है।

उपासना का फलः—ज्ञान की उन्नति करना है। जो परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना व उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न होता है क्योंकि—

ईश्वरः—सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम,

सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्ता हूं, उसकी उपासना करनी योग्य है।

मैं सत्पुरुष का प्रेरक यज्ञ करने हारे को फल प्रदाता और इस विश्व में जो कुछ है उस सब कार्य को बनाने व धारण करने वाला हूं। इसलिए तुम लोग मुझको छोड़ दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत जानो —

अहमिन्द्रो न पराजिग्ये।

ऋ० ॥ मं० १०/सू० ४८ मंत्र ४

इसीलिये कर्मकाण्ड के मर्मज्ञों का निर्विवाद मत है कि सभी संस्कारों (संस्कार उसे कहते हैं जिससे शरीर) मन व आत्मा उत्तम होवे) के आदि में चारों वेदों से स्तुति, प्रार्थना, उपासना तथा स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण सामान्य प्रकरण का विधान किया है।

विवाह संस्कार की सामग्री

२ फलों के बड़ी माला (मिलनी के हार तथा दो जयमाला इनसे अलग होंगी)। १ किलो हवन सामग्री। १ दियासलाई का बक्स। अगरबती का एक पैकेट। कपूर का छोटा पैकेट। २०० ग्राम धान की खोलें (फुल्लियाँ)। १ मिट्टी का छोटा घड़ा ढक्कन सहित। चंदन की गिट्ठी (जिसकी ६ पतली समिधायें कटवा लेवें)। वर के लिये गौ या रुपये या अँगूठी। सँस्कार कराने वाले पंडित जी के लिये धोती और तौलिया ऋतु अनुकूल वस्त्रं। ४ किलो ढाक या आम की समिधायें। १ किलो शुद्ध घी (डालडा नहीं)।

नोट : (अन्य समय के हवन के लिये हवन सामग्री, समिधायें तथा घी अलग लें।) मधु १०० ग्राम तथा दही १०० ग्राम, ८ स्टेनलेस स्टील या अन्य धातु की कटोरियें। ८ चम्मच छोटे। ४ थालियें या पीतल के ढकने या ट्रे। घी के लिए खुले मुंह का बर्तन—पतीला या कटोरदान। ड्राई फ्रूट—१०० ग्राम किशमिश, १०० ग्राम बादाम गिरी, १०० ग्राम मखाने। २ लम्बी कड़छी मुरादाबादी। १ धुला हुआ तौलिया वर के हाथ आदि पोंछने के लिये। १ पत्थर की शिल या पत्थर का चकला। मिठाई दो किलो। मौली (कलावा) की १ गुच्छी। वर-वधू के लिए २ चौकी या बड़े पटड़े। इन पर बिछाने के लिये गद्दा, चादर, दो नये आसन या गद्दियें। बड़ा हवन कुण्ड। हवन कुण्ड के नीचे रखने के लिये बड़ी परात। एक चिमटा। ४-५ आसन या गद्दियें। वेदी सजी हुई। दो माशे सिन्दूर या रोली। फूलों की पत्तियां आशीर्वाद के लिये।

नोट : सर्दी तथा वर्षा ऋतु में वेदी पर शामियाना अवश्य लगवा लेवें। खुले आकाश के नीचे न रखें।

चूड़े के साथ दो लोहे के कड़े भी ले लें।

सभी संस्कारों के आरम्भ में निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगा के करे, और सब लोग उसमें ध्यान लगाकर सुनें और विचारें।

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रन्तन्न आसुव ॥1॥

यजु० अ० ३०। मं० ३॥

अर्थ--हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त (देव) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा, सुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, (तत्) वह सब हमको (आ, सुव) प्राप्त कीजिये-कराइये ॥१॥

दाता सभी गुणों के प्रेरक पिता हमारे।
सब दूर कर बुराई हों भद्र भाव प्यारे॥

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यजु० अ० १३। मं० ४॥

अर्थ-जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और

जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्तमान था, (सः) सो [वह] (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है; हम लोग उस (कस्मै) सुख-स्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ।।२।।

पृथिवी व सूर्य्य तारे, आधार सब तुम्हारे।
जग के तुम्हीं हो रक्षक, करते विनय हैं सारे।।

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।३।।

य० अ० २५ । मं० १३ ।।

अर्थ-(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता (बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा (यस्य) जिसकी (विश्वे सब (देवाः)

विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं, और [यस्य] जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिसका छाया आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है, (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने-हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥३॥

आत्मा व बल के दाता, शासन में सब तुम्हारे ।
जीवन व मृत्युदाता, करते विनय हैं सारे ॥

ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

य० अ० २३ ॥ मं० ३ ॥

अर्थ—(यः) जो (प्राणतः) प्राणवाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) राजा (बभूव) विराजमान है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर

की (ईशे) रचना करता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देनेहारे परमात्मा की उपासना अर्थात् (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करके (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥४॥

चलने व फिरने वाले, स्थिर हों या प्राण धारे।
राजा द्विपद चतुष्पदों के, करते विनय हैं सारे॥

ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

यजु० अ० ३२। मं० ६॥

अर्थ-(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढा) धारण (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोक-लोकान्तरों को (विमान) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों को निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म

की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥५॥

तेजस्वी तथा अतिभारी, नभ में हैं लोक धारे।
आनन्द व मुक्तिदाता, करते विनय हैं सारे॥

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥ ऋ० मं० १०। सू० १२१ मं० १०॥

अर्थ– हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) वह कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे, जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६॥

तेरे सिवा न कोई, रक्षक कभी हुआ है।
झोली धनों से भर दो, सबकी यही दुआ है॥

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥

य० अ० ३२ । मं० १० ॥

अर्थ– हे मनुष्यो (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों को (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा, (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मों को (वेद) जानता है, और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख-दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है, अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें ॥७॥

बन्धु पिता व माता ज्ञाता सभी स्थलों के ।
अमृत का भोग करके, विचरे स्वेछया अब ॥

ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराण-मेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥

य० अ० ४० मं० १६ ॥

अर्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये, और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये, इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नम उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥८॥

जन जन के मार्ग दर्शक कर्मों के फल प्रदाता।
पापों को भस्म कर दो, करते नमो विधाता ॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ॥

अथ स्वस्तिवाचनम्

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ।१। ओ३म् स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ।२। ऋ० मं० १ । सू० १ । मं० १, ६ ॥

ओ३म् स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना ।३। ओ३म् स्वतये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ।४। ओ३म् विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ।५। ओ३म् स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ।६। ओ३म् स्वस्ति पन्थाम-

नुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ।७।

ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । [मं० ११—१५] ॥

ओ३म् देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।८।

ऋ० मं ७ । सू० ३५ । [मं० १५] ॥

ओ३म् येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ।९। ओ३म् नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः । ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ।१०। ओ३म् सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् । तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये ।११। ओ३म् को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन । को वोऽध्वरं तुविजाता

अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ।१२।
ओ३म् येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः
समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः । त आदित्या
अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा
स्वस्तये ।१३। ओ३म् य ईशिरे भुवनस्य
प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता
स्वस्तये ।१४। ओ३म् भरेष्विन्द्रं सुहवं हवाम-
हेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं
वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः
स्वस्तये ।१५। ओ३म् सुत्रामाणं पृथिवीं
द्यामनेहसं सुशर्माणदतिं सुप्रणीतिम् । दैवीं
नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तोमा रुहेमा
स्वस्तये ।१६। ओ३म् विश्वे यजत्रा अधि
वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम श्रृण्वतो देवा अवसे
स्वस्तये ।१७। ओ३म् अपामीवामप विश्वाम-
नाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे
देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता

स्वस्तये ।१८। ओ३म् अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधतेप्रप्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि । यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ।१९। ओ३म् यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमारुहेमा स्वस्तये ।२०। ओ३म् स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ।२१। ओ३म् स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वस्त्यभि या वाममेति । सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ।२२।

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । [मं० ३—१६] ॥

ओ३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशंᳬसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ।२३। यजु० अ० १ । मं० १ ॥

ओ३म् आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे-दिवे ।२४। ओ३म् देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानांꣳरातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानाꣳसख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ।२५। ओ३म् तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।२६। ओ३म् स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।२७। ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।२८।

यजु० अ० २५ । मं० १४, १५, १८, १९, २१ ॥

ओ३म् अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ।२९। ओ३म्

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ।३०।

सा० छन्दआ० प्रपा० १ । म० १, २ ॥

ओ३म् ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ।३१।

अथर्व० कां० १ । सू० १। व० १। अनु० १ । प्रपा० १।मं० १ ॥

इति स्वस्तिवाचनम् ॥

अथ शान्तिकरणम्

ओ३म् शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शं यो शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ।१।

ओ३म् शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ।२।

ओ३म् शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ।३।

ओ३म् शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् । शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः ।४। ओ३म् शं नो द्यावापृथिवी पूर्व-हुतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ।५। ओ३म् शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः । शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह श्रृणोतु ।६। ओ३म् शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ।७। ओ३म् शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।८। ओ३म् शं नो अदि-तिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः । शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ।९। ओ३म्

शन्नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तू-
षसो विभातोः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः
शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ।१०। ओ३म्
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह
धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं
नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ।११।
ओ३म् शं न सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो
अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं नः ऋभवः सुकृतः
सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ।१२।
ओ३म् शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं
नोऽहिर्बुध्न्य१: शं समुद्रः। शं नो अपां नपात्पे-
रुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ।१३।

ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १—१३॥

ओ३म् इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नोऽअस्तु
द्विपदे शं चतुष्पदे ।१४। ओ३म् शं नो वातः
पवता७ शं नस्तपतु सूर्य्यः। शं नः कनिक्रद-
द्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु ।१५। ओ३म्
अहानि शं भवन्तु नः शँ रात्रीः प्रति धीय-
ताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न

इन्द्रावरुणा रातहव्या । शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ।१६। ओ३म् शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंय्योरभिस्रवन्तु नः ।१७। ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्ति-र्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ शान्ति शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।१८। ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ श्रृणु-याम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।१९।

यजु० अ० ३६ । मं० ८, १०—१२, १७, २४ ॥

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।२०। ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विद-थेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।२१। ओ३म् यत्प्रज्ञा-

नमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरमृतं प्रजासु । यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।२२। ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु ।२३। ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तँ् सर्वमोतँ प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।२४। ओ३म् सुषारथिर-श्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽ-इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।२५। य० अ० ३४ । मं० १—६ ॥

ओ३म् स नः पवस्य शङ्गवे शं जनाय शम-र्वते । शँ् राजन्नोषधीभ्यः ।२६।

सामः उत्तरार्चिके प्रपा० १ । मं० ३ ॥

ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावा-पृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्ता-दुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ।२७। ओ३म् अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं

परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।२८।

अथर्व० कां० १९। सू० १५। मं ५, ६॥

इति शान्तिकरणम्॥

अथ सामान्यप्रकरणम्

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिये। परन्तु जहां कहीं विशेष होगा वहां सूचना कर दी जायेगी कि यहां पूर्वोक्त अमुक कर्म न करना और इतना अधिक करना, स्थान-स्थान पर जना दिया जायेगा।

यज्ञदेश – यज्ञ का देश पवित्र अर्थात् जहां स्थल, वायु शुद्ध हो, किसी प्रकार का उपद्रव न हो।

यज्ञशाला—इसी को 'यज्ञमण्डप' भी कहते हैं। यह अधिक से अधिक १६ सोलह हाथ सम चौरस चौकोण और न्यून से न्यून ८ आठ हाथ की हो। यदि जहां भूमि अशुद्ध हो तो दो-दो हाथ यज्ञशाला की और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथिवी खोद अशुद्ध निकाल कर उसमें शुद्ध मिट्टी भरें। यदि १६ सोलह हाथ की सम चौरस हो तो चारों ओर २० बीस खम्भे और जो ८ आठ हाथ की हो तो १२ खम्भे लगाकर उन पर छाया करें।

वह छाया की छत्त वेदी की मेंखला से १० दश हाथ ऊंची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में ४ चार द्वार रक्खें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा, पताका पल्लव आदि बाँधें। नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम, हलदी

मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें। मनुष्यों को योग्य है कि सब मंगलकार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना करें। इसीलिये निम्नलिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें।

यज्ञकुण्ड का परिमाण

जो लक्ष आहुति करनी हों तो चार-चार हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में एक-एक हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहे। इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हो, उतना ही गहिरा चौड़ा, कुण्ड बनाना, परन्तु अधिक आहुतियों में दो-दो हाथ [बढ़ावे] अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिमाण का चौड़ा और समचौरस कुण्ड बनाना।

और पचास हजार आहुति देनी हों तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहिरा चौड़ा समचौरस और पौन हाथ नीचे। तथा पच्चीस हजार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा गहिरा समचोरस और आध हाथ नीचे। दस हजार आहुति तक इतना ही, अर्थात् दो हाथ चौड़ा गहिरा समचौरस और आध हाथ नीचे रखना। पांच हजार आहुति तक डेढ़ हाथ चौड़ा गहिरा समचौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहे।

यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है। यदि इसमें २५०० ढ़ाई हजार आहुति मोहनभोग खीर और २५०० ढाई हजार घृत की देवे तो दो ही हाथ का चौड़ा गहिरा समचौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रक्खें। चाहे घृत की हजार आहुति देनी हों तथापि सवा हाथ से न्यून चौड़ा गहरा समचौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावे और इन कुण्डों में १५ पन्द्रह अंगुल

की मेखला अर्थात् पांच-पाँच अंगुल की ऊंची ३ तीन बनावें। और ये तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनो। प्रथम पाँच अंगुल ऊँची और पांच अंगुल चौड़ी, इसी प्रकार दूसरी और तोसरी मेखला बनावें।

यज्ञ-समिधा

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आंब [=आम], बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाण छोटी-बड़ी कटवा लेवें। परन्तु ये समिधा कीड़ा लगीं, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों, अच्छे प्रकार देख लेवें और चारों ओर बराबर और बीच में चुनें।

होम के द्रव्य चार प्रकार

(प्रथम—सुगन्धित, कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत, चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि। (**द्वितीय—पुष्टि-कारक**) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूं, उड़द आदि। (**तृतीय—मिष्ट**) शक्कर, सहत [=शहद], छुहारे, दाख आदि। (चौथे—रोगनाशक) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि औषधियां।

स्थालीपाक

नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खोर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावें। इसका प्रमाण—

ओ३म्। देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः॥

[तुलना—गोभिल गृह्य० प्रपाठक १। खण्ड ७। सूत्र २४]॥

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध कर लेना अवश्य चाहिये, अर्थात् सबको यथावत्

शोध, छान, देख भाल सुधार कर करें। इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना। जैसे कि सेर भर घी के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो माशे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा, सब डालकर मोहनभोग बनाना। इसी प्रकार अन्य मीठा भात, खीर, खीचड़ी [लवण रहित], मोदक आदि होम के लिये बनावें।

चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने की विधि :-

(ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि) [तुलना आश्वलायन गृ० अध्या० १। कं० १०। सू० ६]। अर्थात् जितनी आहुति देनी हो, प्रत्येक आहुति के लिये चार-चार मूठी चावल आदि लेके **(ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि)**॥ [तुलना आश्व० गृ० अध्या० १। कं० १०। सू० ७]॥ अर्थात् अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवे। जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो, तभी नीचे लिखे आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकाल के यथावत् सुरक्षित रक्खें और उस पर घृत सेचन करें।

यज्ञपात्र

विशेषकर चांदी, सोना अथवा काष्ठ के पात्र होने चाहियें,

ऋत्विक् स्थान

होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा। इनका आसन वेदी के चारों ओर अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख और ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिये और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण में आसन पर

बैठ के उत्तराभिमुख रहे। और इन ऋत्विजों को सत्कारपूर्वक

ऋत्विरणार्थं कुण्डलाङ्गुलीयकवासांसि ।
पत्नीयजमानपरिधानार्थं क्षौमवासश्चतुष्टयम् ।
अग्न्याधेयदक्षिणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एकोनपञ्चाशद् गावः, द्वादशपक्षे पञ्चविंशतिः, षट्पक्षे त्रयोदश, सर्वेषु पक्षेषु आदित्येष्टौ धेनुः वरार्थं चतस्रो गावः ।।

१, श्रौत अग्न्याधेय में पवमान पावक आदित्य संज्ञक तीन 'तनूहवि' नामक इष्टियां होती हैं। इनमें प्रथम दो इष्टियों की दक्षिणा का विधान करते हुए कात्यायन श्रौत सूत्र (४।१०।१२) में ६, १२, २४ गाएं दक्षिणा देने का विधान किया है। आचार्य ने इन्हें प्रति इष्टि दक्षिणा मानकर दूनी संख्या कही है, कात्यायन श्रौत सूत्र ४।१०।१४ में निर्दिष्ट आदित्येष्टि (=अदितिदेवतावली) की १ दक्षिणा मिलाकर २४ पक्ष में ४६, बारह पक्ष में २५ और छ पक्ष में १३ गौएं दक्षिणा देने का विधान किया है। एक पक्ष यह भी है कि नियत संख्या से १ गाए अधिक देनी चाहिए (का० श्रौ० ४।१०।१५) तदनुसार आदित्येष्टि की गाय मिलाकर क्रमशः ५०, २६, १४ होती है अर्थात् ४६, २५, १३ से आदित्येष्टि की दक्षिणा अलग गिनी जाती है। अन्त का 'सर्वेषु पक्षेषु आदित्येऽष्टौ धेनवः' पाठ भ्रष्ट है। यहां 'सर्वेषु पक्षेषु आदित्येष्टौ एका धेनुः' पाठ होना चाहिए।

२. संस्कार चन्द्रिका में 'वरार्थं' के स्थान पर 'वरणार्थं' पाठ शोधन दर्शाया है, यह ठीक नहीं है। अग्न्याधान कर्म मे अग्न्याधान के अनन्तर चारों ऋत्विजों को 'वरं ददाति'। का० श्रौ० ४।८।८।) से वर-अभिलषित वस्तु प्रदान का विधान किया है। 'गौर्ब्राह्मणस्य वरः' (पार० गृ० १।८।१५) नियमानुसार ब्राह्मण को गौ के वर का विधान है। अतः यहां चार ऋत्विजों के 'वर' के लिए चार गायों का विधान किया है। ऋत्विजों के वरणार्थ कुण्डल आदि का विधान पूर्व कर चुके हैं।

आसन पर बैठाना, और वे प्रसन्नतापूर्वक आसन पर बैठ, और उपस्थित कर्म के बिना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें।

और अपने-अपने जलपात्र से सब जने जो कि यज्ञ करने को बैठे हों, वे इन मन्त्रों से तीन-तीन आचमन करें, अर्थात् एक-एक से एक-एक बार आचमन करें, वे मन्त्र ये हैं—

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।१।

इससे एक,

हे ऊपर के अमर ओढ़ने में अमृत पान करूँ।

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।२।

इससे दूसरा,

नीचे के अविछिन्न बिछोने तेरी गोदी में वास करूँ।

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।३।

इससे तीसरा,

हे सत्य, यश, श्री के आश्रय! मैं तीनों में निवास करूँ। [तुलना—आश्व० गृ० अ० १। क० २४। सू० १२। २१,२२]।

इससे तीसरा आचमन करके, तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से जल [ले] करके अंगों का स्पर्श करें—

ओ३म् वाङ्मऽआस्येऽस्तु ।१। इस मंत्र से मुख,

आनन में मेरे रसवती वाणी विराजे।

ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।२।

इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र,

तथा नासिका रन्ध्रों में निर्बाध प्राण बहे।

ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।३।

इस मन्त्र से दोनों आंख,
सदा मित्र दृष्टि से आंखें मेरी देखें।

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।४।

इस मन्त्र से दोनों कान,
और श्रोत्र हितकारी श्रुति श्रवण करें।

ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु ।५।

इस मन्त्र से दोनों बाहु,
भुजाओं में रक्षक बल भद्र सुभावें।

ओ३म् ऊर्वोर्मेऽओजोस्तु ।६।

इस मन्त्र से दोनों जंघा, और
जंघाएं नित्य ओजस्वी भर देह धरें।

ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ।७।

अंग हों निरोग भगवन ! शरीर बलशाली सदा ही।
[तुलना—पारस्कर गृह काण्ड १। कं० ३। सू० २५]॥

इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना। [मार्जन करके] पूर्वोक्त समिधाचयन वेदी में करें। पुनः—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ॥

[गोभिल गृ० प्र० १। खं १। सू० ११]॥

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला, उससे कपूर में लगा, किसी एक पात्र में धर उसमें छोटी-छोटी लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे। वह मन्त्र यह है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।१।

यजु० अ० ३। मं० ५॥

इस मन्त्र से वेदी से बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे-छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर, अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करें—

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सँ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ।२।

यजु० अ० १५। मं० ५४॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबा, उनमें से एक-एक निकाल नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें। वे मन्त्र ये हैं—

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व

वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभि-
र्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ।
इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मन ।१।

[आश्व० गृ० १ । १० । १२] ॥

इस मन्त्र से एक,

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन, स्वाहा ।
इदमग्नये–इदन्न मम ।२।

इससे और

ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे, स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे–इदन्न मम ।३।

इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मन्त्रों से दूसरी,

ओ३म् तंत्वा समिद्‌भिरङ्‌गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठय, स्वाहा ।
इदमग्नयेऽङ्‌गिरसे–इदन्न मम ।४।

यजु० अ० ३ । मं० १, २, ३ ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें ।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चांदी, कांसी आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठपात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें ।

पश्चात् उपरिलिखित घृतादि जो कि उष्ण कर छान पूर्वोक्त पदार्थ मिलाकर पात्रों में रक्खा हो, उसमें से कम से कम ६ मासा भर घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो, अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवें [यही] आहुति का प्रमाण है।

उस घृत में से चमसा कि जिसमें छः मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो, भर के नीचे लिखे मन्त्र से पाँच आहुति देनी—

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभि-र्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम।

[आश्व० गृ० १। १०। १२]

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि और अञ्जलि में जल लेके चारों ओर छिड़कावे। उसके ये मन्त्र हैं:

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व ।१। इस मन्त्र से पूर्व,
ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व ।२। इससे पश्चिम,
ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व ।३। इससे उत्तर,

[गोभिल गृ० प्र० १। ख० ३। सू० १—३] ॥ और—

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञ-पतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।४।

यजुः० अ० ३०। मं० १॥

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावें।

इसके पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें। इसमें मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती है, उनमें से यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है, उनका नाम "आघारावाज्याहुति" हैं। और जो कुण्ड के मध्य में आहुतियाँ दी जाती हैं, उनको "आज्यभागाहुति" कहते हैं। सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा, मध्यमा, अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम ।१।

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में

ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय-इदन्न मम ।२।

[गो० गृ० प्र० १। खं० ८। सू० ३, ४]॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी। तत्पश्चात्—

ओ३म् प्रजापते स्वाहा। इदं प्रजापतये-इदन्न मम ।३।

[तुलना-कात्या० श्रौ० अ० ३। सू० १२]॥

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय-इदन्न मम ।४। [तुलना—कात्या० श्रौ० अ० ३। सू० १६]॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी।

उसके पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति देके जब प्रधान होम अर्थात् जिस-जिस कर्म में जितना-

जितना होम करना हो करके, पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागा०) देवें, पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें—

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये–इदं न मम।१।

ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे–इदं न मम।२।

ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय-इदं न मम।३।

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः–इदं न मम।४।

[गो० गृ० १।८।१५]॥

ये चार घी की आहुति देकर 'स्विष्टकृत होमाहुति' एक ही है। यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिये। उसका मन्त्र—

ओ३म् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां

समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम ।

[आ० गृ० १ । १० । २२] ॥

इससे एक आहुति करके "प्राजापत्याहुति" करें, [यह] नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिये—

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥ [पारस्कर गृ० १ । ६ । ३] ॥

इससे मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवें, परन्तु ये नीचे लिखी आहुति चौल, समावर्तन और विवाह में मुख्य हैं, वे चार मन्त्र ये हैं—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ।१।

[यजु० अ० १९ । मं० ३८] ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ।२।

[तुलना—यजु० अ० २६ । मं० ९] ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्य स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ।

इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥३॥

[ऋ० मं० ९। सू० ६६। मं० १९—२१]॥
[तुलना—यजु० अ० ८। मं० ३८]॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेता-न्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा। इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥४॥ [ऋ० मं० १०। सू० १२१। मं० १०]॥
[तुलना—यजु० अ० २३। मं० ६५]॥

इनसे घृत की चार आहुति करके 'अष्टाज्याहुति' ये [—के] निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मंगलकार्यों में ८ आठ आहुति देवें। परन्तु किस-किस संस्कार में कहां-कहां देनी चाहिये, यह विशेष बात उस-उस संस्कार में लिखेंगे। वे आठ आहुति-मन्त्र में हैं।

ओ३म् त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्यां-इदन्न मम ॥१॥

ओ३म् स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो वरुणं

रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा ।
इदमग्नीवरुणाभ्यां-इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४, ५ ॥

ओ३म् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा । इदं वरुणाय-
इदन्न मम ॥३॥ ऋ० मं० १ । सू० २५ । मं० १९ ॥

ओ३म् तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा
शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह
बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ।
इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

ओ३म् ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाःपाशा
वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत
विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ।
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो
मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः-इदन्न मम ॥५॥

ओ३म् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्य-
मित्त्वमयाऽसि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो

धेहि भेषजँ स्वाहा । इदमग्नये अयसे-इदन्न मम ॥६॥ [कात्या० श्रौत० अ० २५ । सू० ११,
देखिये—पार० गृ० १ । २ । ८] ॥

ओ३म् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा । इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च-इदन्न मम ॥७॥
ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० १५ ॥

ओ३म् भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञँ हिँसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा । इदं जातवेदोभ्यां-इदन्न मम ॥८॥ य० अ० ५ । मं० ३ ॥

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करें । न शीघ्र, न विलम्ब से उच्चारण करें, किन्तु मध्य भाग जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है, करे । यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवें । यदि कोई कार्य-कर्त्ता जड़, मन्दमति, काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो, तो वह शूद्र है; अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो, तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करे और कर्म उसी यजमान के हाथ से करावें ।

पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति करे । स्रुवा को घृत से भर के—

ओ३म् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ।

इस मन्त्र से एक आहुति देवे। ऐसे दूसरी और तीसरी आहुति देके, जिसको दक्षिणा देनी हो देवे, वा जिसको जिमाना हो जिमा, दक्षिणा देके सबको विदा कर स्त्री-पुरुष हुतशेष घृत, भात वा मोहनभोग की प्रथम जीम के, पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें।

मंगलकार्य

अर्थात् गर्भाधानादि संन्यास पर्यन्त पूर्वोक्त और निम्न-लिखित सामवेदोक्त बामदेव्यगान अवश्य करें। वे मन्त्र ये हैं—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ।१। ओ३म् भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्स-दन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु ।२। ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अभी षुणः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवा-स्यूतये ।३। ओ३म् महावामदेव्यम्—काऽ५या। नश्चा३ इत्रा ३ आभुवात्। ऊ। ती सदावृधः स। औ३होहाइ। कया २३ शचाइ। ष्ठयौहो३। हुम्मा २। वार-र्तो३ऽ५हाइ ।(१)। ओ३म् काऽ५स्त्वा। सत्यो३मा-३दानाम्। मा। हिष्ठो मात्सादन्ध। सा। औ३हो-हाइ। दृढा २३ चिदा। रुजौहो३। हुम्मा२। वाऽ३सो३ऽ५ हायि। (२)। ओ३म् आऽ५भी। षु

णा३: सा३खीनाम् । श्रा । विता जरायितॄ णाम् । श्रौ३ हो हायि । शता २३ म्भवा । सियौहो३ । हुम्मा२ । ताऽ२ यो३ऽ५ हायि । (३) ।

साम० उत्तरार्च्चिके । अध्याये १ । खं० ४ । मं० १ । २ । ३॥
[देखिये—गोभिल गृह्य० प्रपा० १ । खं० ६ । सू० २६] ।

यह वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री-पुरुष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् वा त्यागी पक्षपातरहित संन्यासी जो ब्रह्मचर्यव्रत सांगोपांग वेदविद्या, उत्तम शिक्षा और पदार्थविज्ञान को पूर्णरीति से प्राप्त होके (विवाह विधानपूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिये विद्यालय को छोड़ता है ।) इसमें प्रमाण—

मण्डन (मढ़ा)

श्रथ समावर्त्तन संस्कारविधिं वक्ष्याम:

श्रो३म् वेदसमाप्ति वाचयीत । कल्याणै: सह सम्प्रयोग: । स्नातकायोपस्थिताय । राज्ञे च । श्राचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च दधनि मध्वानीय । सर्पिर्वा मध्वलाभे । विष्टर: पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्क: ।१।

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र [१ । २२ । १६ । १ ।२३ । २० । १ । २४,२-७]
तथा पारस्करगृह्यसूत्र [२ । ६ । १-२ । २ । ५ । ३२ में—]

वेदँ समाप्य स्नायाद् । ब्रह्मचर्यं वाष्टचत्वारिँ-

शकम् । त्रय एव स्नातका भवन्ति । विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चेति ।२।

जब वेदों की समाप्ति हो, तब समावर्त्तनसंस्कार करे। सदा पुण्यात्मा पुरुषों के सब व्यवहारों में साझा रक्खे। निम्न-लिखित पुरुषों का जब अपूर्वागमन होवे तब, स्नातक अर्थात् विद्या और ब्रह्मचर्य पूर्ण करके ब्रह्मचारी घर को आवे तब राजा, आचार्य, श्वशुर, पिता के भाई आदि चाचा और मामा जब आवें, तब प्रथम (पाद्यम्) पग धोने का जल, (अर्घ्यम्) मुखप्रक्षालन के लिये जल और आचमन के लिए जल देके शुभासन पर बैठा, दही में मधु अथवा सहत न मिले तो घी मिला के एक अच्छे पात्र में धर इनको मधुपर्क देना होता है और विद्यास्नातक, व्रतस्नातक तथा विद्याव्रतस्नातक ये तीन प्रकार के स्नातक होते हैं। इस कारण वेद की समाप्ति और ४८ (अड़तालीस) वर्ष का ब्रह्मचर्य समाप्त करके ब्रह्मचारी विद्याव्रत स्नान करे ॥१—२॥

तं प्रतीतं स्वधर्मेण धर्मदायहरं पितुः ।
स्रग्विणंतल्प आसीनमर्हयेत् प्रथमं गवा ।३।

[मनु० ३ । ३]

अर्थ—जो विद्वान् माता-पिता का पुत्र शिष्य ब्रह्मचारी हो वह स्वधर्म से यथावत् युक्त पितृस्थानी उस आचार्य को उत्तम आसन पर बैठा, पुष्पमाला पहिना कर प्रथम गोदान देवे, यथाशक्ति वस्त्र, धन आदि भी देके सत्कार करे।

ओ३म् तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपो-

ऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे । स स्नातो बभ्रु पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥४॥

[अथर्व० का० ११ । सू० ५ । मं० २६ ॥]

अर्थ—जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर, बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य में निवास कर महातप को करता हुआ, वेदपठन, वीर्यनिग्रह, आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर पश्चात् स्नानविधि करके पूर्ण विद्याओं को धरता सुन्दर वर्णयुक्त होके पृथिवी में अनेक शुभ, गुण, कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होता है, वही धन्यवाद के योग्य है।

जब विद्या, हस्त क्रिया, ब्रह्मचर्य व्रत भी पूरा होवे तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें। विवाह के स्थान दो हैं। एक आचार्य का घर, दूसरा अपना घर। दोनों ठिकानों में से किसी एक ठिकाने। आगे विवाह में लिखे प्रमाणे सब विधि करे। इस संस्कार का विधि पूरा करके पश्चात् विवाह करें।

विधि—जो शुभ दिन समावर्त्तन का नियत करे उस दिन आचार्य के घर में यज्ञकुण्ड आदि बना के सब शाकल्य और सामग्री संस्कार दिन से पूर्व दिन में जोड़ रक्खे और स्थाली-पाक (भात) के तथा घृतादि और पात्रादि यज्ञशाला में वेदि के समीप रक्खे। ४ (चारों) दिशाओं में आसन बिछा, सुगन्धित द्रव्य शरीर पर मल के, शुद्ध जल से स्नान कर, शरीर को पोंछ अधोवस्त्र अर्थात् धोती वा पीताम्बर धारण करके सुगन्ध-युक्त चन्दनादि का अनुलेपन करे। तत्पश्चात् चक्षु मुख नासिका के छिद्रों का—

ओ३म् प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय ।

[पार० कां० २ । कं० ६ । १९]

इस मन्त्र से स्पर्श करके हाथ में जल से, अपसव्य और दक्षिणमुख होके—

ओ३म् पितरः शुन्धध्वम् । [पार० कां० २। कं० ६।१६।]

इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़ के सव्य होके—

ओ३म् सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासँ सुवर्चा मुखेन । सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासम् ।।

[पार० कां० २। कं० ६। १६ ।।]

इस मन्त्र का जप करके—

ओ३म् परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ।। [पार० कां० २। कं० ६। २० ।।]

इस मन्त्र से सुन्दर, अतिश्रेष्ठ वस्त्र धारण करके—

ओ३म् यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पति । यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ।।

[पार० कां० २। कं० ६। २१ ।।]

इस मन्त्र से उत्तम उपवस्त्र धारण करके—

ओ३म् या आहरज्जमदग्निःश्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय । ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ।।

[पार० कां० २ कं० ६। २३ ।।]

इस मन्त्र से सुगन्धित पुष्पों की माला लेके—

ओ३म् यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु । तेन सङ्ग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि ।।

[पार० कां० २। कं० ६। २४ ।।]

इस मन्त्र से धारण करनी।

पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी, दुपट्टा और टोपी आदि अथवा मुकुट हाथ में लेके (ओं युवा सुवासा०) इस मन्त्र से धारण करे।

उसके पश्चात् अलंकार लेके—

ओ३म् अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात्॥

[पार० कां० २। कं० ६। २६॥]

इस मन्त्र से धारण करे। और—

ओ३म् वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि।

[यजु० अ० ४। मं० ३॥ पार० कां० २। कं० ६। २७॥]

इस मन्त्र से आंख में अञ्जन करना। तत्पश्चात्

ओ३म् रोचिष्णुरसि॥ [पार० कां० ४। कं० ६। २८॥]

इस मन्त्र से दर्पण में मुख अवलोकन करे। तत्पश्चात्—

ओ३म् बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो माऽन्तर्धेहि॥ [पार० कां० २। कं० ६। २९॥]

इस मन्त्र से छत्र धारण करे। पुनः—

ओ३म् प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्॥

[पार० कां० २। कं० ६। ३०॥]

इस मन्त्र से उपानह्, पादवेष्टन, पगरखा और जिसको जोड़ा भी कहते हैं, धारण करे। तत्पश्चात्—

ओ३म् विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः॥

[पार० कां० २। कं० ६। ३१॥]

इस मन्त्र से बांस आदि की एक सुन्दर लकड़ी हाथ में धारण करनी।

पूर्वोक्त प्रकार मधुपर्क कर सुन्दर पुष्पमाला, वस्त्र गोदान, धन आदि की दक्षिणा यथाशक्ति देके सब के सामने आचार्य के जो कि उत्तम गुण हों उनकी प्रशंसा कर और विद्यादान की कृतज्ञता सबको सुनावे—

सुनो भद्रजनो! इन महाशय आचार्य ने मेरे पर बड़ा उपकार किया है जिसने मुझको पशुता से छुड़ा उत्तम विद्वान् बनाया है, उसका प्रत्युपकार मैं कुछ भी नहीं कर सकता, इसके बदले में अपने आचार्य को अनेक धन्यवाद दे, नमस्कार कर प्रार्थना करता हूं कि जैसे आपने मुझको उत्तम शिक्षा और विद्यादान देके कृतकृत्य किया, उसी प्रकार अन्य विद्यार्थियों को भी कृतकृत्य करेंगे। और जैसे आपने मुझको उत्तम विद्या देके आनन्दित किया है, वैसे मैं भी अन्य विद्यार्थियों को कृत-कृत्य और आनन्दित करता रहूंगा और आपके किये उपकार को कभी न भूलूंगा।

सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर आप मुझ और सब पढ़ने पढ़ाने-हारे तथा सब संसार पर अपनी कृपादृष्टि से सबको सभ्य, विद्वान्, शरीर और आत्मा के बल से युक्त और परोपकारादि शुभ कर्मों की सिद्धि करने कराने में चिरायु, स्वस्थ, पुरुषार्थी, उत्साही करे कि जिससे इस परमात्मा की सृष्टि में उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, स्वभावों को करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि कर कराके सदा आनन्द में रहें।

इति समावर्त्तनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

—: ० :—

विवाहसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

'विवाह' उसको कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत, विद्या, बल को प्राप्त होके सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वभावों में तुल्य परस्पर प्रीतियुक्त होके निम्नलिखित प्रमाण सन्तानोत्पत्ति और अपने २ वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध सन्तानोत्पत्ति के अर्थ होता है।

इसमें प्रमाणः—उदगयन आपूर्य्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे* **चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहाः ॥१॥ सार्वकालमेके विवाहम् ॥२॥**

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र [१।४।१।२], और—

आवसथ्याधानं दारकाले ।३। इत्यादिपारस्कर [१।२।१] और **पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत ॥४॥ लक्षणप्रशस्तान् कुशलेन । ५॥**

इत्यादि गोभिलीय [१।१९।१।२] गृह्यसूत्र और इसी प्रकार शौनक गृह्यसूत्र में भी हैं।

अर्थ—उत्तरायण शुक्लपक्ष अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो, उस दिन विवाह करना चाहिये ॥१॥ और कितने ही आचार्यों का ऐसा मत है कि सब काल में विवाह करना चाहिये ॥२॥ जिस अग्नि का स्थापन विवाह में होता है उसका आवसथ्य नाम है ॥३॥ प्रसन्नता के दिन स्त्री का

---

*यह नक्षत्रादि का विचार कल्पनायुक्त है, इससे प्रमाण नहीं।

पाणिग्रहण, जो कि स्त्री सर्वथा शुभ गुणादि से उत्तम हो, करना चाहिये ।५-५।।

इसका समय :—वर वधू परीक्षा में जानना चाहिये । वधू और वर की आयु, कुल, वास्तव्यस्थान, शरीर और स्वभाव की परीक्षा अवश्य करें, अर्थात् दोनों सज्ञान और विवाह की इच्छा करने वाले हों । स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून से न्यून ड्योढ़ी और अधिक से अधिक दूनी होवे । परस्पर कुल की परीक्षा भी करनी चाहिये । इसमें प्रमाण :—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ।।१।।

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।।२।।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ।।३।।

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ।।४।।

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ।।५।।

नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां नपिंगलाम् ।।६।।

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ।।७।।

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारण गामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥८॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥९॥

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥१०॥

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥११॥

एक गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥१२॥

सह नौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥१३॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं विधिवदासुरो धर्म उच्यते ॥१४॥

इच्छायाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥१५॥

हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥१६॥

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥१७॥

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥१८॥
रूपसत्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥१९॥
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥२०॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत् ॥२१॥

[मनु० अ० ३ । २, ४-१०, २१, २७-३४, ३९-४२]

अर्थ—ब्रह्मचर्य से ४ (चार), ३ (तीन), २ (दो) अथवा १ (एक) वेद को यथावत पढ़, अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहाश्रम को धारण करे ।१।

यथावत् उत्तम रीति से ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण कर गुरु की आज्ञा से स्नान करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्ण की उत्तम लक्षणयुक्त स्त्री से विवाह करे ।२।

जो स्त्री माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो, वही द्विजों के लिये विवाह करने में उत्तम है ।३।

विवाह में नीचे लिखे हुए दश कुल, चाहे वे गाय आदि पशु, धन और धान्य से कितने ही बड़े हों, उन कुलों की कन्या के साथ विवाह न करे ।४।

वे दश कुल ये हैं—१ एक—जिस कुल में उत्तम क्रिया न हो। २ दूसरा—जिस कुल में कोई भी उत्तम पुरुष न हो। ३ तीसरा—जिस कुल में कोई विद्वान् न हो। ४ चौथा-जिस कुल में शरीर के ऊपर बड़े-बड़े लोम हों। ५ पांचवां—जिस कुल में

बवासीर हो। ६ छठा—जिस कुल में क्षयी (राजयक्ष्मा) रोग हो। ७ सातवां—जिस कुल में अग्निमन्दता से आमाशय रोग हो। ८ आठवां—जिस कुल में मृगी रोग हो। ९ नववां—जिस कुल में श्वेतकुष्ठ। और १० दसवां—जिस कुल में गलित कुष्ठ आदि रोग हों। उन कुलों की कन्या अथवा उन कुलों के पुरुषों से विवाह कभी न करे।५।

पीले वर्ण वाली, अधिक अङ्ग वाली जैसी छंगुली आदि, रोगवती, जिसके शरीर पर कुछ भी लोम न हों और जिसके शरीर पर बड़े-बड़े लोम हों, व्यर्थ अधिक बोलनेहारो और जिसके पीले, बिल्ली के सदृश नेत्र हों।६।

तथा जिस कन्या का (ऋक्ष) नक्षत्र पर नाम अर्थात् रेवती, रोहिणी इत्यादि, (नदी) जिसका गङ्गा, यमुना इत्यादि, (पर्वत) जिसका विन्ध्याचला इत्यादि (पक्षी) पक्षी पर अर्थात् कोकिला, हंसा इत्यादि, (अहि) अर्थात् उरगा, भोगिनी इत्यादि, (प्रेष्य) दासी इत्यादि, (भीषण,) कालिका, चण्डिका इत्यादि, नाम हों उससे विवाह न करे।७।

किन्तु जिसके सुन्दर अंग, उत्तम नाम, हंस और हस्तिनी के सदृश चाल वाली, जिसके सूक्ष्म लोम, सूक्ष्म केश और सूक्ष्म दांत हों, जिसके सब अंग कोमल हों, उस स्त्री से विवाह करे।८।

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच ये विवाह आठ प्रकार के होते हैं।९।

[१ (एक]—ब्राह्म—कन्या के योग्य, सुशील, विद्वान् पुरुष का सत्कार कर के कन्या को वस्त्रादि अलंकृत करके उत्तम

पुरुष को बुला अर्थात् जिसको कन्या ने प्रसन्न[1] भी किया हो, उसको कन्या देना, यह ब्राह्म विवाह कहाता है।१०।

[२ (दूसरा)]—विस्तृत यज्ञ में बड़े-बड़े विद्वानों का वरण कर उसमें कर्म करने वाले विद्वान् को वस्त्र आभूषण आदि से कन्या को सुशोभित करके देना, वह दैव विवाह।११।

३ (तीसरा)—१ (एक) गाय बैल का जोड़ा अथवा २ (दो) जोड़े※ वर से लेके धर्मपूर्वक कन्यादान करना, यह आर्ष विवाह।१२।

और ४ (चौथा)--कन्या और वर को यज्ञशाला में विधि करके, सबके सामने तुम दोनों मिलके गृहाश्रम के कर्मों को यथावत करो, ऐसा कहकर दोनों की प्रसन्नतापूर्वक पाणिग्रहण होना, वह प्राजापत्य विवाह कहाता है। ये चार विवाह उत्तम हैं।१३।

और ५ (पांचवां)—वर की जातिवालों और कन्या को यथाशक्ति धन देके, होम आदि विधि कर कन्या देना, आसुर विवाह कहाता है।१४।

६ (छठा)—वर और कन्या की इच्छा से दोनों का संयोग होना और अपने मन में मान लेना कि हम दोनों स्त्री-पुरुष हैं, यह काम से हुआ, गान्धर्व विवाह कहाता है।१५।

---

१. प्रसन्न=पसंद। स्वामी जी महाराज, हिन्दी के 'पसंद' शब्द के स्थान पर सर्वत्र 'प्रसन्न' शब्द का प्रयोग करते हैं।
—सम्पादक।

※यह बात मिथ्या है, क्योंकि आगे मनुस्मृति में निषेध किया है और युक्तिविरुद्ध भी है, इसलिये कुछ भी न ले देकर दोनों की प्रसन्नता से पाणिग्रहण होना आर्ष विवाह है।

और ७ (सातवां)—हनन, छेदन अर्थात् कन्या के रोकने वालों का विदारण कर क्रोशती, रोती, कांपती और भयभीत हुई कन्या को बलात्कार से हरण करके विवाह करना, यह राक्षस, अतिनीच विवाह है।१६।

८ (आठवां)—और जो सोती, पागल हुई वा नशा पीकर उन्मत्त हुई कन्या को एकान्त पाकर दूषित कर देना, यह सब विवाहों में नीच से नीच, महानीच, दुष्ट, अतिदुष्ट, पैशाच विवाह है।१७।

ब्राह्म, देव, आर्ष और प्राजापत्य इन ४ (चार) विवाहों में पाणिग्रहण किये हुए स्त्री-पुरुषों से जो सन्तान उत्पन्न होते हैं वे वेदादि विद्या से तेजस्वी, आप्त पुरुषों के सम्मत, अत्युत्तम होते हैं।१८।

वे पुत्र वा कन्या सुन्दर, रूप, बल, पराक्रम, शुद्ध बुद्धयादि उत्तम गुणयुक्त, बहुधनयुक्त, पुण्यकीर्तिमान् और पूर्ण भोग के भोक्ता, अतिशय, धर्मात्मा होकर १०० (सौ) वर्ष तक जीते हैं।१९।

इन चार विवाहों से जो बाकी रहे ४ (चार) आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच, इन चार दुष्ट विवाहों से उत्पन्न हुए सन्तान निन्दित कर्मकर्ता, मिथ्यावादी, वेदधर्म के द्वेषी, बड़े नीच स्वभाव वाले होते हैं।२०।

इस लिए मनुष्यों को योग्य है कि जिन निन्दित विवाहों से नीच प्रजा होती है, उनका त्याग और जिन उत्तम विवाहों से उत्तम प्रजा होती हैं, उनको करना अत्युत्तम है।२१।

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः ॥१॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥२॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥३॥

[मनु० अ० ९ । ८८-९०]

अर्थ :—यदि माता-पिता कन्या का विवाह करना चाहें, तो अति उत्कृष्ट शुभ गुण कर्म स्वभाव वाले, कन्या के सदृश रूपलावण्यादि गुणयुक्त वर ही को चाहें। यह कन्या (वर की) माता की छः पीढ़ी के भीतर भी हो तथापि उसी को कन्या देना, अन्य को कभी न देना कि जिससे दोनों अति प्रसन्न होकर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानों की उत्पत्ति करें।१।

चाहे मरणपर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के बैठी भी रहे परन्तु गुणहीन, असदृश, दुष्टपुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही बिवाह करें।२।

जब कन्या विवाह करने की इच्छा करे, तब रजस्वला होने के दिन से ३ (तीन) वर्ष को छोड़ के चौथे वर्ष में विवाह करे।३।

(प्रश्न) "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी" इत्यादि श्लोकों की क्या गति होगी ?

(उत्तर) इन श्लोकों और इनके मानने वालों की दुर्गति। अर्थात् जो इन श्लोकों की रीति से बाल्यावस्था में अपने

सन्तानों का विवाह कर करा उनको नष्ट-भ्रष्ट रोगी, अल्पायु करते हैं, वे अपने कुल का जानो सत्यानाश कर रहे हैं। इसलिये यदि शीघ्र विवाह करें तो वेदारम्भ में लिखे हुए १६ (सोलह) वर्ष से न्यून कन्या और २५ (पच्चीस) वर्ष से न्यून पुरुष का विवाह कभी न करें करावें। इसके आगे जितना अधिक ब्रह्मचर्य रक्खेंगे उतना ही उनको आनन्द अधिक होगा।

(प्रश्न) विवाह निकटवासियों से अथवा दूरवासियों से करना चाहिए ?

(उत्तर)–दुहिता दुर्हिता दूरे हिता भवतीति ॥

(तु०-निरु० ३ । ४ ॥)

यह निरुक्त का प्रमाण है कि जितना दूर देश में विवाह होगा उतना ही उनको अधिक लाभ होगा।

(प्रश्न) अपने गोत्र वा भाई बहिनों का परस्पर विवाह क्यों नहीं होता ?

(उत्तर) एक—दोष यह है कि इनके विवाह होने में प्रीति कभी नहीं होती, क्योंकि जितनी प्रीति परोक्ष पदार्थ में होती है, उतनी प्रत्यक्ष में नहीं और बाल्यावस्था के गुण-दोष भी विदित रहते हैं तथा भयादि भी अधिक नहीं रहते। दूसरा—जब तक दूरस्थ एक दूसरे कुल के साथ सम्बन्ध नहीं होता तब तक शरीर आदि की पुष्टि भी पूर्ण नहीं होती। तीसरा—दूर सम्बन्ध होने से परस्पर प्रीति, उन्नति, ऐश्वर्य बढ़ता है, निकट से नहीं।

युवावस्था ही में विवाह करने में वेद प्रमाण—

ओ३म् तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि

यन्त्यापः । स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥१॥

अर्थ—जो (मर्मृज्यमानाः) उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त शुद्ध (युवतयः) २० (बीसवें) वर्ष से २४ (चौबीसवें) वर्ष वाली हैं, वे कन्या लोग, जैसे (आपः) जल वा नदी, समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे (अस्मेराः) हमको प्राप्त होने वाली, अपने-अपने प्रसन्न[1], अपने-अपने से डेढ़ वा दूने आयु वाले (तम्) उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण, शुभलक्षण-युक्त (युवानम्) जवान पति को (परियन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं, (सः) वह ब्रह्मचारी (शुक्रेभिः) शुद्ध गुण और (शिक्वभि) वीर्यादि से युक्त हो के (अस्मे) हमारे मध्य में (रेवत्) अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म को और (दीदाय) अपने तुल्य युवती स्त्री को प्राप्त होवे। जैसे (अप्सु) अन्तरिक्ष वा समुद्र (घृतनिर्णिक्) जल को शोधन करने हारा (अनिध्मः) आप प्रकाशित विद्युत् अग्नि है, इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान, भीतर सुप्रकाशित रह कर उत्तम सन्तान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री-पुरुष प्राप्त होवें ।१।)

ओ३म् अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् । कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥२॥

हे स्त्री पुरुषो ! जैसे (तिस्रः) उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट स्वभावयुक्त (देवीः) विद्वान् नरों की विदुषी स्त्रियां (अस्मै)

१. प्रसन्न—पसंद । सम्पादक ।

इस (अव्यथ्याय) पीड़ा से रहित (देवाय) काम के लिए (अन्नम्) अन्नादि उत्तम पदार्थों को (दिधिषन्ति) धारण करती हैं, (कृता इव) की हुई शिक्षायुक्त के समान (असु) प्राणवत् प्रीति आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होने के लिये स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री (उप प्रसस्रे) सम्बन्ध को प्राप्त होती है, (स हि) वही पुरुष और स्त्री आनन्द को प्राप्त होती हैं। जैसे जलों में (पीयूषम्) अमृत रूप रस को (पूर्वसू नाम्) प्रथम प्रसूत हुई स्त्रियों का बालक (धयति) दुग्ध पी के बढ़ता है, वैसे इन ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी स्त्री के सन्तान यथावत् बढ़ते हैं।२।

ओ३म् अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन्। आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥३॥ ऋ० मं० २। सू० ३५। मं० ४-६

जैसे राजादि सब लोग (पूर्षु) अपने नगरों और (आमासु) अपने घर में उत्पन्न हुए पुत्र और कन्यारूप प्रजाओं में उत्तम शिक्षाओं को (परः) उत्तम विद्वान् (अप्रमृष्यम्) शत्रुओं को सहने के अयोग्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त हुए शरीरात्मबलयुक्त देह को (अरातयः) शत्रु लोग (न) नहीं (विनशन्) विनाश कर सकते, और (अनृतानि) मिथ्याभाषणादि दुष्ट दुर्व्यसन उनको प्राप्त (न) नहीं होते वैसे उत्तम स्त्री-पुरुषों को (द्रुहः) द्रोह आदि दुर्गुण और (रिषः) हिंसा आदि पाप (न सम्पृचः) सम्बन्ध नहीं करते, किन्तु जो युवावस्था में विवाह कर प्रसन्नतापूर्वक विधि से सन्तानोत्पत्ति करते हैं इनके (अस्य) इस (अश्वस्य) महान् गृहाश्रम के मध्य में उत्तम बालकों का (जनिम) जन्म होता है। इसलिये हे स्त्री व पुरुष ! तु (सूरीन्) विद्वानों की (पाहि) रक्षा कर। (च) और ऐसे गृहस्थों को (अत्र) इस गृहाश्रम में सदैव (स्वः) सुख बढ़ता रहता है।३।

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्। आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्त्तयाते ॥४॥ ऋ० मं ५। सू० ३७। मं० ३।

हे मनुष्यो ! (यः) जो पूर्वोक्त लक्षणयुक्त पूर्ण जवान (ईशम्) सब प्रकार की परीक्षा करके (महिषीम्) उत्तम कुल में उत्पन्न हुई, विद्या, शुभगुण, रूप, सुशीलतादि युक्त (इषिराम्) वर की इच्छा करनेहारी, हृदय को प्रिय स्त्री को (एति) प्राप्त होता है, और जो (पतिम्) विवाह से अपने स्वामी की (इच्छन्ति) इच्छा करती हुई (इयम्) यह (वधूः) स्त्री अपने सदृश, हृदय को प्रिय पति को (एति) प्राप्त होती है, वह पुरुष वा स्त्री (अस्य) इस गृहाश्रम के मध्य (आश्रवस्यात्) अत्यन्त विद्या धन धान्ययुक्त सब ओर से होवे। और वे दोनों (रथः) रथ के समान (आघोषात्) परस्पर प्रिय वचन बोलें, (च) और सब गृहाश्रम के भार को (वहते) उठा सकते हैं। तथा वे दोनों (पुरु) बहुत (सहस्रा) असंख्य उत्तम कार्यों को (परिवर्तयाते) सब ओर से सिद्ध कर सकते हैं।४।

उप व एषे वन्द्येभि शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः। उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा ही वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥५॥ ऋ० मं० ५। सू० ४१। मं० ७।

हे मनुष्यो ! यदि तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य से सुशिक्षित, विद्यायुक्त अपने सन्तानों को कराके स्वयंवर विवाह कराओ, तो वे (वन्द्येभिः) कामना के योग्य, (चितयद्भिः) सब सत्य विद्याओं को जाननेहारे, (अर्कैः) सत्कार के योग्य, (शूषैः) शरीरात्मबलों से युक्त होके (वः) तुम्हारे लिये (एषे) सब सुख प्राप्त कराने

को समर्थ होवें, और वे (उषासानक्ता) जैसे दिन और रात तथा जैसे (विदुषोव) विदुषो स्त्री और विद्वान् पुरुष (विश्वम्) गृहाश्रम के सम्पूर्ण व्यवहार को (आवहतः) सब ओर से प्राप्त होते हैं, (ह) वैसे ही इस (यज्ञम्) संगतरूप गृहाश्रम के व्यवहार को वे स्त्री पुरुष पूर्ण कर सकते है। और (मर्त्याय) मनुष्यों के लिये यही पूर्वोक्त विवाह पूर्ण सुखदायक हैं। और (यह्वो) बड़े ही शुभ गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री-पुरुष दोनों (दिवः) काम-नाओं को (उप प्र वहतः) अच्छे प्रकार प्राप्त हो सकते हैं, अन्य नहीं।५।

जैसे ब्रह्मचर्य में कन्या का ब्रह्मचर्य वेदोक्त है, वैसे ही सब पुरुषों को ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ पूर्ण जवान हो, परस्पर परीक्षा करके जिससे जिसकी विवाह करने में पूर्ण प्रीति हो, उसी से उसका विवाह होना अत्युत्तम है। जो कोई युवावस्था में विवाह न कराके बाल्याबस्था में अनिच्छित अयोग्य वर कन्या का विवाह कराते हैं, वे वेदोक्त ईश्वराज्ञा के विरोधी होकर महा-दुःखसागर में क्योंकर न डूबेंगे ? और जो पूर्वोक्त विधि से विवाह करते कराते हैं, वे ईश्वराज्ञा के अनुकूल होने से पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं।

(प्रश्न) विवाह अपने अपने वर्ण में होना चाहिये वा अन्य वर्ण में भी ?

(उत्तर) अपने-अपने वर्ण में। परन्तु वर्णव्यवस्था गुण-कर्मों के अनुसार होनी चाहिये, जन्ममात्र से नहीं। जो पूर्ण विद्वान् धर्मात्मा, परोपकारी, जितेन्द्रिय, मिथ्याभाषणादिदोषरहित, विद्या और धर्म प्रचार में तत्पर रहे इत्यादि उत्तम गुण जिसमें हों, वह ब्राह्मण ब्राह्मणी। विद्या बल शौर्य न्यायकारित्वादि गुण जिसमें हों वह क्षत्रिय क्षत्रिया। और जो विद्वान् होके

कृषि, पशुपालन, व्यापार, देशभाषाओं में चतुरता आदि गुण जिसमें हों वह वैश्य वैश्या। और जो विद्याहीन, मूर्ख हो वह शूद्र शूद्रा कहावे। इसी क्रम से विवाह होना चाहिये, अर्थात् (ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शूद्रा के साथ ही विवाह होने में विवाह आनन्द होता है) अन्यथा नहीं।

इस वर्णव्यस्था में प्रमाण—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥१॥

अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥२॥

[आपस्तम्बे—प्र० २। ५। ११। १०, ११॥]

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥३॥

मनुस्मृति [अ० १०। ६५॥]

अर्थ—धर्माचरण से नीच वर्ण उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है, और उस वर्ण में जो-जो कर्त्तव्य अधिकार रूप कर्म हैं, वे सब गुण कर्म उस पुरुष और स्त्री को प्राप्त होवें।१।

वैसे ही अधर्माचरण से उत्तम-उत्तम वर्ण नीचे-नीचे के वर्ण को प्राप्त होवें और वे ही उस-उस वर्ण के अधिकार और कर्मों के कर्त्ता होवें।२।

उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से जो शूद्र है वह वैश्य, क्षत्रिय, और ब्राह्मण और वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण, तथा क्षत्रिय,

ब्राह्मण वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है। वैसे ही नीच कर्म और गुणों से जो ब्राह्मण है। वह क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तथा वैश्य, शूद्र वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है।३।

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था होने से पक्षपात न होकर सब वर्ण उत्तम बने रहते और उत्तम बनने में प्रयत्न करते, और उत्तम वर्ण, भय से कि मैं नीच वर्ण न हो जाऊं, इसलिये बुरे कर्म छोड़, उत्तम कर्मों को ही किया करते हैं, इससे संसार की बड़ी उन्नति है। आर्यावर्त्त देश में जब तक ऐसी वर्णव्यवस्था पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण और उत्तमता से स्वयंवर विवाह होता था तभी देश की उन्नति थी, अब भी ऐसा ही होना चाहिये, जिससे आर्यावर्त देश अपनो पूर्वावस्था को प्राप्त होकर आनन्दित होवे।

परीक्षा—अब वधू वर एक-दूसरे के गुण, कर्म और स्वभाव की परीक्षा इस प्रकार करें—दोनों का तुल्य शील, समान आचार, समान रूपादि गुण, अहिंसकता, सत्य मधुर भाषण, कृतज्ञता, दयालुता, अहंकार, मत्सर, ईर्ष्या, काम, क्रोध [—रहितता] निर्लोभता, देश का सुधार, विद्याग्रहण, सत्योपदेश करने में निर्भयता, उत्साह, कपट, द्यूत, चोरी, मद्य, मांसादि दोषों का त्याग, गृहकार्यों में अति चतुरता हो।

जब-जब प्रातः-सायं वा परदेश से आकर मिलें तब-तब 'नमस्ते' इस वाक्य से परस्पर नमस्कार कर स्त्री पति के चरणस्पर्श, पादप्रक्षालन, आसन दान करे तथा दोनों परस्पर प्रेम बढ़ानेहारे वचनादि व्यवहारों से वर्त्तकर आनन्द भोगें। वर के शरीर से स्त्री का शरीर पतला और पुरुष के स्कन्ध तुल्य स्त्री का शिर होना चाहिये।

वर-वधू की परीक्षा

तत्पश्चात् भीतर की परीक्षा स्त्री-पुरुष वचनादि व्यवहारों से करें—

ओ३म् ऋतमग्रे प्रथमं जज्ञे ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम् । यदियं कुमार्य्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम् । यत्सत्यं तद्दु दृश्यताम् ॥

[आश्व० गृ० अ० १ । कं० ५ । ५ ॥]

अर्थ—जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और वर चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावें पश्चात् उत्तम विद्वान् स्त्री-पुरुषों की सभा करके दोनों परस्पर संवाद करें कि हे स्त्री वा हे पुरुष ! इस जगत् के पूर्व ऋत, यथार्थस्वरूप महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ था और उस महत्तत्त्व में सत्य, त्रिगुणात्मक नाशरहित प्रकृति प्रतिष्ठित है। जैसे पुरुषों और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न हुआ है, वैसे मैं कुमारी और मैं कुमार पुरुष इस समय में दोनों विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करती वा करता हूं, उसको यह कन्या और मैं वर प्राप्त होवें और अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये दृढ़ोत्साही रहें।

पश्चात् एक※ घण्टे मात्र रात्रि जाने पर—

ओ३म् काम वेद ते नाम मदो नामासि समान-

※यदि आधी रात तक विधि पूरा न हो सके तो मध्याह्नोत्तर आरम्भ कर देवे कि जिससे मध्यरात्रि तक विवाह-विधि पूर्ण हो जावे।

यामँ्सुरा ते अभवत् । परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥१॥

ओ३म् इमं त उपस्थ मधुना सँ्सृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद् द्वितीयम् । तेन पुँ्सोभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञि स्वाहा ॥२॥

ओ३म् अग्नि क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः । तेनाज्यमकृण्वँ् स्त्रैश्रृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥३॥ [गो० २ । १ । १० ॥]

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को लेके वधू और वर स्नान कर पश्चात् वधू उत्तम वस्त्रालंकार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे ।

वाग्दान (सगाई)

तत्पश्चात् वैदिक नित्यकर्म विधि द्वारा ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण कर। तत्पश्चात् अग्न्याधान समिदाधान, स्थालीपाक आदि यथोक्त कर वेदी के समीप रक्खे। वैसे ही वर भी एकान्त अपने घर में जाके उत्तम वस्त्रालंकार करके यज्ञशाला में आ उत्तमासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना कर वधू के घर को जाने का ढंग करे। दोनों पक्ष एक दूसरे पक्ष के जनों को माल्यार्पण कर स्वागत तत्पश्चात् कन्या के और वरपक्ष के पुरुष बड़े सन्मान से वर को वधू के घर ले जावें ।

मिलनी

कन्या के घर जब बराती और वर आवे तब चार मन्त्र दोनों पक्ष के पण्डित बोलें—

**ओ३म् येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते: मिथः ।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ।।१।।**

अर्थ—हे गृहस्थो ! मैं ईश्वर (येन) जिस प्रकार के व्यवहार से (देवा:) विद्वान् लोग (मिथ:) परस्पर (न, वियन्ति) पृथक् भाव वाले नहीं होते (च) और (नो, विद्विषते) परस्पर में द्वेष कभी नहीं करते वही कर्म (व:) तुम्हारे (गृहे) घर में (कृण्म:) निश्चित करता हूं (पुरुषेभ्य:) पुरुषों को (संज्ञानम्) अच्छे प्रकार चिताता हूं कि तुम लोग परस्पर प्रीति से वर्त कर बड़े (ब्रह्म) धनैश्वर्य को प्राप्त होओ ।।१।।

ओ३म् जयायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्योअन्यस्मै वल्गु वदन्त एत-सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ।।२।।

अर्थ—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! तुम (ज्यायस्वन्त:) उत्तम विद्यादिगुणयुक्त (चित्तिन:) विद्वान् सज्ञान (सधुरा:) धुरंधर होकर (चरन्त:) विचरते और (संराधयन्त:) परस्पर मिल के धन-धान्य, राज्य समृद्धि को प्राप्त होते हुए (मा, वियौष्ट) विरोधी वा पृथक्-पृथक् भाव मत करो (अन्य:) एक (अन्यस्मै) दूसरे के लिये (वल्गु) सत्य मधुर भाषण (वदन्त:) कहते हुए एक दूसरे को (एत) प्राप्त होओ । इसीलिये (सध्रीचीनान्)

समान लाभाऽलाभ से एक दूसरे के सहायक (संमनसः) ऐकमत्य वाले (वः) तुम को (कृणोमि) करता हूं अर्थात् मैं ईश्वर तुम को (कृणोमि) करता हूं अर्थात् मैं ईश्वर तुम को जो आज्ञा देता हूं, इस को आलस्य छोड़कर किया करो ॥२॥

ओ३म् समानी प्रपा सह वोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।३॥

अर्थ—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! मुझ ईश्वर की आज्ञा से तुम्हारा (प्रपा) जलपान स्नानादि का स्थान आदि व्यवहार (समानी) एकसा हो (वः) तुम्हारा (अन्नभागः) खान-पान (सह) साथ हुआ करो (वः) तुम्हारे (समाने) एक से (योक्त्रे) अश्वादि यान के जोते (सह) संगी हों और तुम को मैं धर्म्मादि व्यवहार में भी एकीभूत करके (युनज्मि) नियुक्त करता हूं जैसे (आराः) चक्र के आरे (अभितः) चारों ओर से (नाभिमिव) बीच के नालरूप काष्ठ में लगे रहते हैं अथवा जैसे ऋत्विज् लोग और यजमान यज्ञ में मिल के (अग्निम्) अग्नि आदि के सेवन से जगत् का उपकार करते हैं वैसे (सम्यञ्चः) सम्यक् प्राप्तिवाले तुम मिल के धर्मयुक्त कर्मों को (सपर्यत) एक दूसरे का हित सिद्ध किया करो ॥३॥

ओ३म् सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्। देवाइवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ।४॥

हे गृहस्थादि मनुष्यो ! मैं ईश्वर (वः) तुम को (सध्रीचीनान्) सह वर्त्तमान (संमनसः) परस्पर के लिये हितैषी (एकश्नुष्टीन्) एक ही धर्मकृत्य में शीघ्र प्रवृत्त होने वाले

(सर्वान्) सब को (संवननेन) धर्मकृत्य के सेवन के साथ एक दूसरे के उपकार में नियुक्त (कृणोमि) करता हूं, तुम (देवाइव) विद्वानों के समान (अमृतम्) व्यावहारिक वा पारमार्थिक सुख को (रक्षमाणाः) रक्षा करते हुए (सायंप्रातः) संध्या और प्रातः-काल अर्थात् सब समय में एक दूसरे से प्रेमपूर्वक मिला करो ऐसे करते हुए (वः) तुम्हारा (सौमनसः) मन का आनन्दयुक्त शुद्धभाव (अस्तु) सदा बना रहे ॥४॥

जिस समय वर वधू के घर प्रवेश करे वैदिक नित्य कर्म विधि के अनुसार वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार आदर-सत्कार करें। उसकी रीति यह है कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और✲ वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रह के वधू और कार्यकर्त्ता—

कन्या के घर की विधि

इस वाक्य को कन्या बोले।

ओ३म् साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम्।

हे सभ्यजन ! सत्कार का अधिकार दे दो।

[पार० का० १। कं० ३। सू० ४॥]

तत्पश्चात् वर बोले—

ओ३म् अर्चय।

✲विवाह संस्कार में वधू को यज्ञवेदी पर सर्वप्रथम उपस्थित होना चाहिए।

मैं समर्पित हूं तुम्हारे, पुष्प का उपहार दे दो ।

ऐसा प्रत्युत्तर देवे। पुनः जो वधू और कार्यकर्त्ता ने वर के लिये उत्तम आसन तैयार कर रक्खा हो, उसको वधू हाथ में ले वर के आगे खड़ी रह के—

ओ३म् विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रति-गृह्यताम् ॥

स्थिर सुखासन दे रही हूं, लो इसे अंगीकार कर लो ।

यह उत्तम आसन आप ग्रहण कीजिये। वर—

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ॥

स्वीकार करता हूँ इसे मैं, तुम बैठना स्वीकार कर लो ।

इस वाक्य को बोल के वधू के हाथ से आसन ले, बिछा उस पर सभामण्डप में पूर्वाभिमुख बैठ के वर—

सभामण्डप विधि

ओ३म् वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः । इमन्तमभितिष्ठामि वो मा कश्चाभिदासति ।

[पार० कां० १। कं० ३। ८॥]

नक्षत्रों बीच रवि तेजस्वी जनगण में मैं भी वर्चस्वी ।
शत्रु दल को रौंद पैरों से धरती पर बनूं यशस्वी ॥

इस मन्त्र को बोले। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भर के हाथ में देवे और कन्या—

ओ३म् पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ।।

(चरणप्रक्षालनार्थजलम्)

जग में जल जीवन सार, धोए चरण भागी थकान ।

इस वाक्य को बोल के वर के आगे धरे । पुनः वर—

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ।।

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से उदक ले पग प्रक्षालन करे, और उस समय—

ओ३म् विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ।।

[पार० कां० १ । कं० ३ । १२ ।।]

आप दूर से आये हो श्रीमन् ! बहुत थक गये होंगे ।
श्रम निवारक जल लीजिए, चरण धो शान्त मन कीजिए ।।

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् फिर भी कार्यकर्त्ता दूसरा शुद्ध लोटा पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे । पुनः कन्या—

ओ३म् अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ।।

धोने का शुभ जल मेरे प्रिय कान्त ।
धो मुख जिससे मुख उज्ज्वल रहे, मन होवे शान्त ।।

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ।।

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से जल-पात्र ले के उससे मुख प्रक्षालन करे और उसी समय वर मुख धोके—

ओ३म् आप स्थ युष्माभिः सर्वान्कामान-वाप्नवानि ॥१॥

ओ३म् समुद्र वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभि-गच्छत । अरिष्टास्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥२॥ [पार० कां० १। कं० ३। १३, १४ ॥]

समुद्र योनि जल से सब पूर्ण काम होते हैं ।
धरती के वीर सारे निरोग बलवान होते हैं ॥

इस मन्त्रों को बोलें तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठें। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उसमें आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे, और उस समय कन्या—

ओ३म् आचमनीयमाचमनीयमाचमनीम्प्रति-गृह्यताम् ॥

लो पवित्र जल आचमन कीजिए ।
कण्ठ को निर्मल मधुर कर लीजिए ॥

इस वाक्य को बोल सामने करे। और वर—

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ में से जलपात्र को ले, सामने धर, उसमें से दाहिने हाथ में जल जितना अंगुलियों के मूल तक पहुंचे उतना ले के, वर—

आचमन मन्त्र

ओ३म् आ मागन् यशसासँ् सृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥ [पार० कां० १ कं० ३ । १५ ॥]

**पवित्र जल तन को बल आत्मा को यश देता है ।
पशु-पक्षी तथा लता-वृक्षों को स्वस्थ जीवन देता है ॥**

इस मन्त्र से एक आचमन इसी प्रकार दूसरी और तीसरी वार इसी मन्त्र को पढ़ के दूसरा और तीसरा आचमन करे।

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क✿ का पात्र कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओ३म् मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिऽगृह्यताम् ॥

ऐसी विनति वर से करे। और वर—

ओ३म् प्रति गृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से ले, और उस समय—

✿ मधुपर्क उसको कहते हैं जो दही में घी वा सहत मिलाया जाता है। उसका परिणाम १२ (बारह) तोले दही में ४ (चार) तोले सहत अथवा ४ (चार) तोले घी मिलाना चाहिये, और यह मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है।

ओ३म् मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ।।

[पार० कां० १ । कं० ३ । १६ ।।]

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे । और—

ओ३म् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो-र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रति गृह्णामि ।।

[यजु० अ० १ । मं० १० । पार० कां० १ । ३ । १७ ।।]

ईश द्वारा प्रेरित संग्रहीत मधु मक्खियों से ।
मधु पुष्टि दाता मिलता है कुंज और वनों से ।।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।१।

चले मधु बहाती वायु नदियों से मधु झरे ।
मीठी मीठी सब औषधी होंवे प्रभु कृपा करे ।।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ।।२।।

द्यौ पिता दिन रात, प्रातः सायं मधु बरसाये ।
कृपा सिन्धु प्रभु नित्य धरती में मधु सरसाये ।।

इस मन्त्र को बोल के मधुपर्क के पात्र को वाम हाथ में लेवे । और—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। मधुमान्नो वनस्पति-र्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥३॥

[तु० यजु० अ० १३। मं० २७-२९ ॥]

मनोहर सूर्य किरणों से वृक्षों में मधुर रस भरे।
धरित्री धरणी मीठी वाणी दुधारू गायें मधुर रहे ॥

इन तीन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करके—

ओ३म् नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ॥ [पार० कां० १। कं० ३।१८ ॥]

मधुपर्क में जो विजातीय द्रव्य उसको दूर करूँ।

इस मन्त्र को पढ़ दाहिने हाथ की अनामिका और अंगुष्ठ से मधुपर्क को तीन बार विलोवे। और उस मधुपर्क में से वर—

ओ३म् वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु।

इस मन्त्र से पूर्व दिशा। (छोटे वन्धुओं को।)

ओ३म् रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु।

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा। (समवयस्क जनों को।)

ओ३म् आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा भक्षयन्तु। आयु वृद्ध परिजनों को।

इस मन्त्र से पश्चिम दिशा। और—

ओ३म् विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ।

तथा उपस्थित अभ्यागतों को ।

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा-थोड़ा छोड़े अर्थात् छींट देवे ।

ओ३म् भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि ।

अनुकूल पशु-पक्षियों को ।

उपभोग करा के–उपभोग करूं मैं ।

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के पात्र के मध्य भाग में से लेके ऊपर की ओर तीन बार फेंकना । तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांसे के पात्रों में धर भूमि में अपने सन्मुख तीनों पात्र रखे, रखके—

मधुपर्क मन्त्र

ओ३म् यन्मधुनो मधव्यं परमँ रूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ।

[पार० कां० १ । कं० ३ । २० ।।]

हे मधुमय मधुपर्क ! तुम आदि सृष्टि में जन्मे । उप भोग करने वाले तेरे बहुत रूप सम्पन्न बने ।।

इस मन्त्र को एक-एक बार बोल के एक-एक भाग से वर थोड़ा-थोड़ा प्राशन करे वा सब प्राशन करे, जो उन पात्रों में

शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो, वह किसी अपने सेवक को देवे वा जल में डाल देवें। हाथ धोकर आचमन करें। तत्पश्चात्—

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥

आश्वाला गृ० सू० अ० १। क० २४। सू० २१॥

प्रभो! तेरी छत्रछाया में, मैं अमृत का पान करूँ।

अर्थः—हे अमृत! तू प्राणियों का आश्रयभूत है, यह हमारा कथन सत्य हो।

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥

आश्व० सू० अ० १। क० २४। सू० २२॥

पाकर सत्य-यश-शोभा, निजजीवन का उद्धार करूँ।

अर्थः—मुझ में सत्यता, कीर्ति, शोभा, लक्ष्मी स्थित हो।

इन दो मन्त्रों से दो आचमन अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा करे, तत्पश्चात् वर चक्षुरादि इन्द्रियों को जल से स्पर्श करे, फिर कन्या—

दहेज में गौ आदि देना

कन्या द्वारा—

ओ३म् गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम् ॥ अर्थः—यह गाय लीजिये।

आबालवृद्धों की सच्ची माता आयु भर दूध पिलाती।
बने काम्य व्यंजन इसके योग से कामधेनु कहलाती॥

इस वाक्य से वर की विनती करके अपनी शक्ति से गोदानादि द्रव्य, जो कि वर के योग्य हो, करे और वर—

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ।। अर्थ—मैं स्वीकार करता हूं ।

जीवन भर गौ सेवा करके, घर को सुख धाम करूँ ।

इस वाक्य से उसको ग्रहण करे । इस प्रकार मधुपर्कविधि आदि यथावत् करके वधू और कार्यकर्त्ता वर को सभामण्डप-स्थान से घर में लेजाके शुभ आसन पूर्वाभिमुख बैठा के वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को बिठावे और कार्यकर्त्ता पूर्वाभिमुख बैठ के—

यदि सभामण्डप स्थापन न किया हो तो जिस घर में मधुपर्क हुआ हो तो दूसरे घर में वर को लेजावें ।

ओ३म्[1] अमुकगोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नीमलंकृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ।।

अर्थः—अमुक गोत्रोत्पन्न, अमुक नाम वाली, तेजस्वी भूषणादि से अलंकृत इसको आप स्वीकार करें ।।

इस प्रकार बोल के वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रख के उसके हाथ का दक्षिण हाथ चत्ता ही रखना और वर—

---

१. अमुकगोत्रोत्पन्नम्, के ऊपर "वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् नाम कीर्तयेद्विद्वान् कन्यायाश्चैवमेव हि" इत्यादि पार० गृ० सू० का १ । क० ४ पर हरिहरभाष्य देखना चाहिए, वहां यह स्पष्ट है ।

यहां वर-वधू दोनों पक्षों के पिता, पितामह, प्रपितामह का गोत्रोच्चारण का नाम लिया जाता है ,

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ।। अर्थः—स्वीकार करता हूं ।।

बोल के फिर—

ओ३म् जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपावा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ।।

पार० गृ० सू० का० १ । क० ४ ।।

अर्थः—हे कन्ये ! तू (जराम्) निर्दोष वृद्धावस्था को, मेरे साथ (गच्छ) प्राप्त हो। और मेरे दिए हुए इस (वासः) वस्त्र को (परि, धत्स्व) पहन। (कृष्टीनाम्) कामादिकों से खैंचे हुए मनुष्यों के बीच में (वा) निश्चयरूप से (अभिशस्तिपावा) अभिशाप—प्रमाद से अपने आपको रक्षा करने वाली (भव) हो। (शतं, च, शरदः) और सौ वर्ष पर्यन्त (जीव) प्राण धारण कर और (सुवर्चाः) तेजस्विनी होकर (रयिम्) धन का और (अनु) पीछे (पुत्रान्) पुत्रों का (सं, व्यस्व) संग्रह कर। हे (आयुष्मति) सुन्दर आयु वाली कन्ये ! (इदं, वासः) इन वस्त्र को (परि, धत्स्व) पहन ।।

वर का वधू को स्वदेशी वस्त्र का उपहार

इस मन्त्र को बोल के वधू को उत्तम वस्त्र देवे । तत्पश्चात्—

ओ३म् या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ । तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ।

सा० मं० ब्रा० १ । १ ।

अर्थ :—(याः) जिन व्यवसायिनी स्त्रियों ने, इस वस्त्र के सूत को (अकृन्तन्) काता है और (याः) जिन देवियों ने इस वस्त्र के सूत को (अवयन्) बुना है (याः, च) और जिन्होंने इसके सूत को (अतन्वत) फैलाया है और जिन (देवीः) देवियों ने (तन्तून्) इस वस्त्र के सूतों को (अभितः) दोनों ओर से (ततन्थ) सूचीकर्म से वा तुरी आदि के व्यापार से गूँथ कर फैलाया है (ताः, देवीः) वे देवियां (त्वा) तेरे प्रति (जरसा) वृद्धावस्थापर्यन्त ऐसे ही वस्त्र (संव्ययस्व) पहनाती रहें। हे (आयुष्मति) प्रशस्त आयु वाली कन्ये ! (इदं वासः) इस वस्त्र को तू (परि, धत्स्व) पहन।

इस मंत्र को बोल के वधू को वह उपवस्त्र देवे। वह उपवस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करे।

ओ३म् परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ।

अर्थ :—हे सज्जनो ! अपने शरीर को आच्छादित करने के लिये, प्रतिष्ठा के लिये और दीर्घ जीवन के लिये शरीररूप धन की पुष्टि करने वाले सुन्दर वस्त्रों को मैं समावृत्त-अच्छे प्रकार धारण करूंगा क्योंकि बहुत धन पुत्रादि से संयुक्त होकर मैं वृद्धावस्था पर्यन्त जीवन की इच्छा रखता हूं। ईश्वर कृपा करे कि मैं सौ वर्ष वृद्धावस्थापर्यन्त जीवन लाभ करूं।

वर का वस्त्र धारण करना

इस मन्त्र को पढ़ के वर आप अधोवस्त्र धारण करे और—

ओ३म् यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती । यशो भगश्च मा विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ।

अर्थ :—हे सज्जनो ! अन्तरिक्ष और पृथिवी लोक मुझे यश के साथ ही मिलें । धनी और विद्वान् मुझे यश के साथ ही प्राप्त हों । मुझे ईश्वर यश का लाभ करावे और आप लोग आशीर्वाद दें कि मुझे यश प्रतिष्ठा प्राप्त हो ।

बड़े होम की तैयारी

इस मन्त्र को पढ़के द्विपट्टा धारण करे । इस प्रकार वधू वस्त्रपरिधान करके जब तक सम्हले तब तक कार्यकर्त्ता अथवा दूसरा कोई यज्ञमण्डप में जा सब सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़ कर रक्खे । और वरपक्ष का एक पुरुष शुद्धवस्त्र धारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को लेके[1] यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो, कलशस्थापन कर जबतक विवाह का कृत्य पूरण न हो जाय, तबतक बैठा रहे । और उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड लेके कुण्ड के दक्षिण भाग में कार्यसमाप्तिपर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे और वधू का सहोदर भाई अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई, मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का हो,

---

१ जल—कुम्भ को ग्रहण करना आदि सब विधि, पारस्करादि गृह्यसूत्रों में पाई जाती है, ग्रन्थ के विस्तार—भय से सब स्थलों में प्रमाण-निर्देश नहीं किया, यह पूर्व भी लिख दिया है ।

वह चावल वा जुआर की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिला कर शमीपत्रयुक्त धाणी की चार अञ्जली एक शुद्ध धूप में रखके धाणीसहित सूप लेके यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे। फिर कार्यकर्त्ता एक सपाट शिला जोकि सुन्दर चिकनी हो, उसको तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञिय तृणासन अथवा यज्ञिय वृक्ष की छाल के जो कि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों, उन आसनों को रखवावे। तत्पश्चात् वस्त्रधारण की हुई कन्या को कार्य्यकर्ता वर के संमुख लावे और उस समय वर और कन्या यह मन्त्र उच्चारण करें।

पति तथा कन्या दोनों मन्त्र बोले

वर-वधू की अभिन्नता को घोषणा

ओ३म् समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ। ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४७॥

अर्थ :—वर और कन्या बोले—हे (विश्वे, देवाः) इस यज्ञशाला में बैठे हुये विद्वान् लोगो! आप हम दोनों को (समञ्जन्तु) निश्चय कर के जाने कि अपनी प्रसन्नतापूर्वक गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिये एक दूसरे को स्वीकार करते हैं कि (नौ) हमारे दोनों के (हृदयानि) हृदय (आपः) जल के समान (सम्) शांत और मिले हुए रहेंगे जैसे (मातरिश्वा) प्राणवायु हम को प्रिय हैं वैसे (सम्) हम दोनों एक दूसरे से

सदा प्रसन्न रहेंगे जैसे (धाता) धारण करने हारा परमात्मा सब में (सम्) मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे को धारण करेंगे जैसे (समुदेष्ट्री) उपदेश द्वारा श्रोताओं से प्रीति करता है वैसे (नौ) हमारे दोनों का आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को (दधातु) धारण करे ॥१॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वर दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़े हुए—

वर मंत्रोचारण करे

ओ३म् यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा। हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसा करोतु असौ। पार० गृ० सू० का १। क० ४॥

अर्थ :—(असौ) इस पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करे। हे वरानने ! (यत्) जैसे तू (मनसा) अपनी इच्छा से मुझ को जैसे (पवमानः) पवित्र वायु वा जैसे (हिरण्यपर्णो, वैकर्णः) तेजोमय जल आदि को किरणों से ग्रहण करने वाला सूर्य (दूरम्) दूरस्थ पदार्थों और (दिशोऽनु) दिशाओं को प्राप्त होता है वैसे तू प्रेमपूर्वक अपनी इच्छा से मुझ को प्राप्त होती है वा होता है उस (त्वा) तुझको (सः) वह परमेश्वर (मन्मनसाम्) मेरे मन के अनुकूल (करोतु) करे और जो आप मन से मुझ को (ऐषि) प्राप्त होते हो, उस आपको जगदीश्वर मेरे मन मन के अनुकूल सदा रक्खे ।२॥

स्वागतविधि व्याख्या

इस विधि के ७ अंग हैं :–

(१) प्रथम वाणी द्वारा स्वागत वधू द्वारा वर का किया जाना।

(२) बैठने के लिये वर को आसन प्रदान करना।

(३) दूर से आने के कारण थकावट को दूर करने के लिये पैर धोने का जल देकर पैर धुलवाना।

(४) आलस्य निवारणार्थ मुख धोने के लिये जल से मुख धुलवाना।

(५) कण्ठ शोधन के लिये आचमन जल द्वारा आचमन कराना।

(६) भोजनार्थ वात, पित्त, कफ नाशक दही, घृत अथवा मधु मिश्रित मधुपर्क प्रदान कर फिर भक्षण के लिये प्रार्थना करना।

(७) वर द्वारा अपने घर की देवियों का वस्त्र रूप में उपहार अर्पित। जिस उपहार वस्त्र का घर की माता, ताई, चाची और भौजाई ने कातकर बुना और फिर रंग दिया।

वैदिक पद्धति में स्त्री-पुरुष का समान अधिकार होता है। सम गुण, कर्मों और स्वभावों से स्त्री-पुरुष

मित्र होते हैं। मित्र की पहचान निम्न श्लोक में सम्यकतया दर्शायी गई है :—

पापान्निवारयति, योजयते हिताय,
गुह्यं च गुह्यति गुणान्प्रकटी करोति।
आपद्गतञ्च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्र - लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः।

भर्तृहरि शतक, श्लोक ७३,

नीतिज्ञ कहते हैं कि मित्र पाप से दूर करता है। पति पत्नी एक दूसरे की उन्मुख प्रवृत्ति रूप पाप से परस्पर को बचाते हैं। हित के कार्यों में मित्र नियुक्त करता है।

वर-वधू भी पितृ ऋण से अनृण होने के लिये काम रूप उद्वेग को सन्तति निर्माण की मर्यादा में संयम के द्वारा अपने आप को नियोजित करते हैं।

मित्र धनाभाव आदि को दूसरों पर प्रकट नहीं होने देते। ऐसे स्त्री-पुरुष अभाव के लघु दोष को प्रकट नहीं होने देते। क्योंकि अपने पुरुषार्थ से अभाव की पूर्ति तो सहज सम्भव कर देते हैं।

सच्चे मित्र एक दूसरे के गुणों को प्रकट करते हैं। यही स्वभाव दम्पति का होना चाहिये। दम-घर

को कहते हैं, उसके दो पति, रक्षक-नर--नारी होते हैं।

हितैषी, मित्र, रोगादि आपत्तियों में साथ नहीं छोड़ते। इस प्रकार रूग्णादि अवस्था में पति-पत्नी को दूर न रह कर साथ रहते हुए सेवा-सुश्रूषा से एक दूसरे को स्वस्थ करने का यत्न करना चाहिये।

सच्चे साथी सखा के आगमन पर मीठी वाणी से सत्कार करते हैं, वैसे नवागन्तुक गृहस्थ भी करते हैं।

आगत महानुभाव को बैठने के लिये सुखासन प्रदान करना आर्यों की संस्कार विधि में प्रारम्भकाल से होता आया है। अतः महाजनों की शैली को नये गृहस्थ के इच्छुक भी वर्तते हैं।

वैदिक परम्परा में वधू निजवर को शुद्ध, पवित्र जल पैर और मुख धोने के लिये देते आये हैं। इसी शैली का प्रदर्शन नवदम्पति भी करते हैं।

श्रुत्वा स्ववरं द्वारगतं सखीभिः,
प्रत्युत्थाय सद्यैव द्वारं गता सा।
दत्त्वासनं त्रिविधं जलं च देवी,
पूजां विधिपूर्वकं चकार योग्याम्॥

संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों में इस विधि का वर्णन पाया जाता है। जब सामान्य व्यक्ति आतिथ्य की परम्परा को निभाते हैं तो नये-नये दोस्त तो इस विधि को अति उत्साह और स्नेह से करते ही हैं।

मधुपर्क की व्याख्या

मधुपर्क सृष्टि के आद्य आहारों में प्रथम आहार है। वात, पित्त, कफ, नाशक परम औषधी है।

आयुर्वेद के उत्कृष्ट ग्रन्थ सुश्रुत में दधि, घृत, मधु के सम्बन्ध में लिखा है :-

दधि "वातापहं पवित्रं दधि गव्यं रुचिप्रदम्" गाय के दूध से निष्पादित दही वातनाशक सौन्दर्य्य उत्पन्न करती है। स्वच्छ है।

घृत "वात, पित्त प्रशमनं अग्निदीपनम्" दही से निकाला घी वायु और पित्त को शान्त रखता है, जठराग्नि को तीव्र करता है। आयु को बढ़ाता है।

मधु "दोषत्रयहरं योगवाही परमं लघु" शहद वात, पित्त, कफ को मर्यादा में रखता है तथा हल्का है। तथा जिसके साथ मिलता है, उसकी शक्ति को बढ़ा देता है।

सुदूर से आने वाले व्यक्ति के प्रायः तीनों दोष बढ़ जाते हैं, उनको शान्त रखना तथा भूख लगाना दही, घी, शहद से बने मधुपर्क के गुण हैं। तीनों का सम्मिश्रण तथा खूब मथना मधुपर्क को वाजीकरण बनाता है, जो गृहस्थ के लिए उपयोगी है।

घृत का सेवन करने वाला गृहस्थ बलवान् होता है। बलवान् व्यक्ति सज्जनों के साथ मधुर व्यवहार शहद जैसा कर सकता है। परन्तु वह दुष्ट-जनों के साथ दही जैसा खट्टा कटु व्यवहार करने में भी समर्थ होता है। समाज में दो ही प्रकार के व्यक्ति प्रायः पाये जाते हैं। बुरे और अच्छे। गृहस्थ का दोनों से पाला पड़ता है। मधुपर्क सेवन करने वाला व्यक्ति दोनों से निर्वाह करने में सफल होता है।

मधु संग्राहक मधु मक्खियों को शिक्षा भी गृहस्थ को ग्रहण करनी चाहिये। जैसे युवा मधु मक्खियां मधु लेने के लिये पुष्पों से केवल अपने अभिप्रेत शहद का संचय करते समय पुष्पों की सुगन्धि को और सौन्दर्य्य को हानि नहीं पहुंचाती, वैसे ही गृहस्थ को अपने भरण-पोषण की सामग्री जुटाते समय किसी व्यक्ति के मन सौन्दर्य्य और यश रूपी सुगन्ध को हानि नहीं पहुंचानी चाहिये।

गृहस्थ को छोटी मक्खी से यह भी शिक्षा लेनी चाहिये कि जो शहद वह संग्रहीत करके लाती है वह अपने से बड़ी महारानी मक्खी को छत्ते में अर्पित कर देती है। इसी प्रकार सद्गृहस्थ भी जो भी भरण-पोषण की सामग्री वह लाये, अपने बड़ों की सुपुर्दगी में समर्पित कर दें। फिर घर की अधिष्ठात्री माता की आज्ञा से छोटे-बड़े अतिथियों को उस वस्तु का प्रथम उपभोग कराये, पश्चात् स्वयं करें। इस प्रक्रिया से युवा स्त्री-पुरुष छोटे के श्रद्धा-भाजन, बड़ों के स्नेह पात्र और अतिथियों से यश के अधिकारी बन जाते हैं।

संक्षिप्त में पति-पत्नी घृत में स्नेह की भांति परस्पर स्नेह करने वाले बनें। दोनों मधु की तरह मधुरता का व्यवहार करें। दही की तरह स्वच्छ रहे और बुराई से बचें, एक दूसरे को बचायें।

गौ-दान की व्याख्या

आर्यवर्त्त के लोग गौ को माता कहकर पुकारते हैं। इनकी जो श्रद्धा पृथिवी माता के प्रति होती है; जो भावना जन्मदात्री माता के प्रति होती है। वही निष्ठा गौ के प्रति होती है। "गच्छतीति गौ" जो

स्वयं गतिशील है और अपने दूध, दही, छाछ, घृत, मूत्र और गोबर से व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को गतिशील बनाती है, निर्माण करती है। "माता निर्माताभवति" माता निर्माण करने वाली को कहा गया है। यह ऐसी मां है, जो वर्गभेद, देशभेद से दूर रह कर मानवमात्र को, आबाल, वृद्ध को आयु भर अहर्निश भरण-पोषण रक्षण में निरत रहती है।

गृहस्थियों की तो गृह दीपिका, आधार स्तम्भ समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली कामधेनु है। कल्पलतिका है। इससे पांच अमृत मिलते हैं जिनके योग का नाम वेदज्ञों ने पंचगव्य रखा है।

(१) दूध-पहला अमृत है। यह शरीर को बल प्रदान करता है। पुष्टि करता है। वाजीकरण है। पुत्रदाता है। बुद्धि को तीव्र करता है। ग्रीष्मादि ऋतु में बढ़ने वाले क्षय आदि रोगों का निरोधक है। क्योंकि गाय ही एक ऐसा जीवनदाता प्राणी है जिसको न सर्दी सताती है और न गर्मी। अतः इसके दूध में भी सर्दी-गर्मी को सहन करने की क्षमता है। इसके दूध को सेवन करने वाले व्यक्तियों को सर्दी गर्मी नहीं सताती। राजस्थान में सर्दी और गर्मी दोनों ही पर्याप्त होती है। परन्तु वहां के व्यक्तियों पर

गर्मी और सर्दी का प्रभाव नहीं पड़ता। शरीर से लम्बे, एकहरे, निरोग और गौर वर्ण के होते हैं। क्योंकि राजस्थान में गौवें बहुतायत से पाई जाती हैं।

(२) दूसरा अमृत दही और छाछ है। यह पाचक है। पेट के कीड़ों को नष्ट करती है। इनके निरन्तर सेवन से मनुष्य को अर्श, भगन्दर आदि रोग नहीं होते। भोजन को पचाती है। नियमित रूप से निद्रा प्रदान करती है।

(३) तीसरा अमृत घृत को कहा गया है। वात, पित्त को शमन करता है। नित्य सेवन करने वाले मनुष्य के घुटनों में दर्द वार्द्धक्य पर्यन्त नहीं सताते। शरीर को सुडौल बनाता है। तेज वर्धक है। अनेक स्वादु भोजन घृत से निर्मित होते हैं। आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद है।

(४) चौथा अमृत मूत्र है। मूत्र से असाध्य रोगों की चिकित्सा होती है। कैन्सर का रोगी यदि नित्य सेवन करे तो कैन्सर शमन हो जाता है। पेट की गैस को समाप्त करता है। आंखों की ज्योति बढ़ाता है आर्थिक दृष्टि से भी लाभदायक है। एक गाय वर्ष भर ३३४७ पौण्ड मूत्र देती है। जिसमें से (क) सेर

पोटाश। (ख) ३० सेर नाईट्रोजन। (ग) ३२ सेर फासफेट निकलता है, जिसकी कीमत ८००) रु० होती है।

(५) पांचवा अमृत गोबर है। गोबर परम औषध चोट लगने पर ताजा गोबर बांधने से सूजन नहीं रहती, दर्द दूर हो जाता है। इसके लेपन से भूमि पवित्र रहती है, उस पर कीटाणु प्रवेश नहीं करते। आज के युग में तो गौ भक्त इसके गोबर से गस बना कर चूल्हा जलाते हैं, पंखा चलाते हैं, आटा पीसते हैं और घर में प्रकाश करते हैं। फिर गोबर खाद के कार्य में आता है जो सर्वोत्तम खाद माना गया है। वर्ष भर गैस की कीमत १२००) रुपये होती। खाद का मूल्य ५००) रुपया। मूत्र ८००) कुल २५००)। अभी दूध का मूल्य शेष है जो कि न्यूनातिन्यून १८०००) वर्ष का बनता। २०५००) इससे गाय का मूल्य और खर्च निकाल कर १०,०००) बचता है।

इस प्रकार लाभप्रद सुखदायिनी गौ माता को जिसमें ३३ करोड़ देवताओं का निवास माना गया है। अपने जामाता को कन्या का पिता दान करता है। जो देवी कामधेनु शरीर आत्मा और मन को

बल देने वाली, घर में लक्ष्मी का वास कराने वाली है, सन्तति से प्रेम करने की शिक्षा देने वाली "जातं वत्समिवाघ्न्या" पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणाओं की पूर्ति करती है। गृहस्थ को सुख देकर दुःखों से पार करने वाली नाव है।

उपरोक्त के अतिरिक्त इसके बैल हल चलाने में, भार उठाने में परम सहायक होते हैं। २० वर्ष के पश्चात् पेट्रोल समाप्त हो जायेगा। फिर वृषभ धरती को धारण करेगा, उसका उद्धार करेगा। "वृषभो दाधार पृथिवीम्"।

कन्या-दान की व्याख्या

वैदिक शास्त्रों में आर्य संस्कृति के अनुसार पिता के द्वारा योग्य वर के हाथों में समर्पित करने का आदेश है। कन्या उसको कहते हैं जिसके स्वभाव में सहज सुख निहित होता है। "कं सुखं न्यस्तं निहितं स्वभावे यस्या सा कन्या भवति"।

कन्या का दूसरा नाम 'दुहिता' है। दुहिता का अर्थ है जिसका हित दूर देश के युवक के सम्बन्ध से होता है। "दूरे हितं यस्या भवति सा दुहिता भवति"।

आज के युग में कृषि शास्त्रियों ने नसल सुधारने

की प्रक्रियाओं से सिद्ध कर दिया है कि भिन्न नसल के वृक्षों की भिन्न नसल के पौधों पर कलम (पोन्द) लगाने से वृक्षों से फलों में अद्‌भुत वृद्धि एवं गुणों का समावेश हुआ है। जिसके उदाहरण आम और बेरी आदि के वृक्ष हैं।

पशुओं की नसलों में भी दूर देश के पशुओं के साथ नियुक्त करने से अच्छी सन्तति पैदा होती है। दूध में अभूतपूर्व वृद्धि होती है।

बलवान हृष्ट-पुष्ट मनुष्य सन्तान प्राप्ति के लिये दूर देश के एवं भिन्न गोत्र के वर-वधू का विवाह किया जाता रहा है। लाखों वर्ष पूर्व रामायण एवं ५ हजार वर्ष के महाभारत का इतिहास इसके साक्षी हैं। महाराज धृतराष्ट्र का विवाह गन्धार देश की गन्धारी से हुआ था। अमेरिका की उलोपी का विवाह महावीर अर्जुन से हुआ था।

गुणों से अलंकृत कन्या का विवाह गुणों से अलंकृत वर से होना अनिवार्य है।

वर और कन्या के पिता वर-कन्या के कुलों का गोत्र का ध्यान रखकर एक दूसरे का हाथ एक दूसरे को सौंपते हैं।

कन्या और वर परस्पर अपनत्व को समर्पित करने से उनके माता-पिताओं का बड़ा दायित्व निपट जाता है। दोनों पक्षों के पितृजनों को पुण्य एवं यश मिलता है। स्मृति ग्रन्थों में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है :-

अलंकृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै।
ब्राह्मणेनतु विवाहेन दद्यात्तां तु सुपूजिताम् ॥१॥
सकन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विन्दति पुष्कलम्।
साधुवादं स वै सद्भिः कीर्ति प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥२॥
ज्योतिष्टोमादियज्ञानां शतं शतगुणी कृतम्।
प्राप्नोति पुरुषो दत्वा होम मन्त्रैश्च संस्कृताम् ॥३॥
सम्वर्त ६१-६३ ॥

दश पुत्र समा कन्या दश पुत्रान् वर्धयन्।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तल्लभ्यं कन्ययैकया ॥४॥
स्कन्द पु० २।२।२४।४६

सर्वेषां दानानां कन्यादानं विशिष्यते।
सहस्रमेव धेनूनां शतं चानडुहां समम् ॥५॥
स्कन्द पु० ४।२।१२

सम गुण, कर्म, स्वभाव वाले वर को गुणों से अलंकृत ब्राह्म विवाह की विधि से यथायोग्य सत्कार करके कन्या को देवे ॥१॥

कन्या दान करके वह पिता बहुत कल्याण को प्राप्त करता है। लोगों से सम्बन्धियों से धन्यवाद और यश को प्राप्त करता है ॥२॥

हवन मन्त्रों से पवित्र वातावरण से पवित्र कन्या को योग्य हाथों में सौंपकर पिता १०,००० ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों का फल प्राप्त करता है ॥३॥

दश पुत्रों का पालन करने वाला पिता जो पुण्य लाभ करता है, वह एक कन्या के विवाह कर देने से प्राप्त करता है ॥४॥

सब दानों में कन्या दान की यह विशेषता है कि उससे मानव-समाज की वृद्धि होती है। अतः कन्या-दान से कन्या के पिता के को वह फल मिलता है जो १ सहस्त्र गौवों और १०० बैलों के दान से मिलता है।

हवन मन्त्रों को वर बोल कर वधू को लेकर घर के बाहिर मण्डपस्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए दोनों आवें और वर यह मन्त्र बोले—

पुनः दो मन्त्र का उच्चारण

ओ३म् भूर्भुवः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवृ-

Scanned with CamScanner

कामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।३।

ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ४४ ॥

अर्थ :—हे वरानने (अपतिघ्नि) पति से विरोध न करने हारी ! जिस के (ओम्) रक्षा करने वाला (भूः) प्राणदाता (भुवः) सब दुःखों को दूर करने हारा (स्वः) सुखस्वरूप और सब सुखों के दाता आदि नाम है, उस परमात्मा की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से तू (अघोरचक्षुः) प्रियदृष्टि (एधि) हो (शिवा) मंगल करने हारी (पशुभ्यः) सब पशुओं को सुखदाता (सुमनाः) पवित्रांतःकरणयुक्त प्रसन्नचित्त (सुवर्चाः) सुन्दर शुभ गुण कर्म्म स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित (वीरसूः) उत्तम वीर पुरुषों की उत्पन्न करने हारी (देवृकामा) देवर की शुभ कामना करती हुई (स्योना) सुखयुक्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिए (शम्) सुख करने हारी (भव) सदा हो और (चतुष्पदे) गाय आदि पशुओं की भी (शम्) सुख देने हारी हो वैसे ही मैं तेरा पति भी बर्ता करूंगा ।३।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। सा नः पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशती विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामु कामा बहवो निविष्टच्यै ॥४॥ परा० का० १ । ४ । १६ ॥

अर्थ :—(सा, पूषा) वह प्रसिद्ध, जगत् का पोषक—परमात्मा (नः) हमारे प्रति (शिवतमाम्) अत्यन्त कल्याणकारिणी तुझ कन्या को (ऐरय) प्रवृत्त करे अर्थात् हम में प्रीतियुक्त बनावे (इस मन्त्र में भी प्रथम पुरुष के स्थान में मध्यम पुरुष

का प्रयोग छान्दस है) जिससे कि (सा) वह कन्या (नः) हमारे लिए (उशती) सुखादि की इच्छा करती हुई (ऊरू विहर) ऊर्वादि प्रदेशों को फैलावे (यस्याम्) जिसमें कि (उशन्तः) सुखादि की इच्छा करते हुए हम (शेफम्) अपने इन्द्रिय को (प्र, हराम) व्यापृत करें और (यस्याम् उ) जिस स्त्री में ही (बहवः, कामः) बहुत से धर्म, पुत्र, रमणादि रूप अभिलषणीय विषय (निविष्ट्यै) अग्निहोत्रादि द्वारा अन्तःकरणशुद्धिपूर्वक वैराग्य के लिए होते हैं। 卐

वधू की मंगल प्रार्थना

ओ३म् प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पतां शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ॥४॥

ब्रा० प्र० १। ख० १। मं० ८॥

अर्थ—(मे) मेरा (पतियानः) पति का जो मार्ग है वैसा हो (पंथाः) मार्ग (प्र, कल्पताम्) बने, जिससे कि मैं (शिवा) सुख पाती हुई (अरिष्टा) निर्विघ्न होकर (पतिलोकम्) सबके पति परमात्मा को (गमेयम्) प्राप्त होऊं।

यज्ञविधि प्रारम्भ

इन चार मन्त्रों को बोलने के पश्चात् दोनों वर-वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा, करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापना किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के, वधू—

पुरोहित नियुक्ति

इस मन्त्र को बोले, फिर यथाविधि यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित को स्थापना करे, फिर–

आचमन मन्त्र

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।१। पहला
ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।२। दूसरा
ओ३म् सत्यं यशःश्रीर्मयि श्रीःश्रयतां स्वाहा।३। तीसरा

अग्न्याधान

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सँ सृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ।

समिदाधान

ओ३म् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्य-

स्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशु-
भिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।
इदमग्नये जातवेदसे–इदं न मम ।१।

इस मन्त्र से पहली समिधा

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयता-
तिथिम् आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा।
इदमग्नये इदन्न मम ।२। इससे तथा

ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहो-
तन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये
जातवेदसे–इदन्न मम ।३।

इन दो मन्त्रों से दूसरी समिधा

ओ३म् तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन
वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा ॥
इदमग्नयेऽङ्गिरसे–इदन्न मम ।४।

इस मन्त्र से तीसरी समिधा

घृताहुति मन्त्र

इस मन्त्र का ५ बार उच्चारण करके ५ घृताहुति देवें।

ओ३म् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेने-
ध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया

पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।
इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम

जल प्रसेचन मंत्र

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व। इससे पूर्व भाग में
ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व। इससे पश्चिम भाग में
ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व इससे उत्तर भाग में
ओ३म् देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु। इससे कुण्ड के चारों ओर

आघारावाज्याहुति मन्त्र

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम।
इस मन्त्र से कुण्ड में उत्तर भाग की ओर अग्नि में,
ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय-इदन्न मम। इस मन्त्र से दक्षिण भाग की ओर अग्नि में

आज्यभागाहुति मन्त्र

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये-इदन्न मम।

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय-इदन्न मम। इन दोनों मन्त्रों से कुण्ड के मध्य में एक आहुति देवें।

अष्ट आज्याहुति मन्त्र

ओ३म् त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्यां। इदन्न मम ।१।

ओ३म् स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोति नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्यां इदन्न मम ।२।

ओ३म् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके स्वाहा । इदं वरुणाय इदन्न मम ।३।

ओ३म् तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषी स्वाहा । इदं वरुणाय इदन्न मम ।४।

ओ३म् ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवि-

तोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्न मम ।५।

ओ३म् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजँ स्वाहा। इदमग्नये अयसे इदं न मम ।६।

ओ३म् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा। इद वरुणायाऽऽदित्यायादितये च इदं न मम ।७।

ओ३म् भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञँ हिँसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा। इदं जातवेदोभ्यां इदन्न मम ।८।

प्रधान होम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श करके।

प्रधान होम सम्बन्धी पांच आज्याहुति

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूँषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ।१।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ।२।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ।३।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्न मम ।४।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं विभर्षि । अंजन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ।।

ऋ० मं० ५ । सू० ३ । मं० २ ।।

राष्ट्रभृत यज्ञ

ओ३म् ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदमृतासाहे ऋतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय इदन्न मम ॥१॥ ओ३म् ऋताषाड् ऋतधामाग्निगन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः इदन्न मम ॥२॥ ओ३म् सँहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं सँहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय, इदन्न मम ।३। ओ३म् सँहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः, इदन्न मम ॥४॥ ओ३म् सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं सुषुम्णाय, सूर्यरश्मये, चन्द्रमसे गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥५॥ ओ३म् सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्त-

स्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । ताभ्यः स्वाहा ।। इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः, इदन्न मम ।।६।। ओ३म् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ।। इदमिषिराय विश्व-व्यचसे वाताय गन्धर्वाय, इदन्न मम ।।७।। ओ३म् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्त-स्यापो अप्सरस ऊर्ज्जो नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदमद्भ्योऽप्सरोभ्य ऊर्ग्भ्यः, इदन्न मम ।८। ओ३म् भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय, इदन्न मम ।।९।। ओ३म् भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः, इदन्न मम ।।१०।। ओ३म् प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ।। इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय, इदन्न मम ।।११।। ओ३म्

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम । ताभ्यः स्वाहा ।। इदमृक्सामेभ्योप्सरोभ्य एष्टिभ्यः, इदन्न मम ।।१२।।

राष्ट्रभृत यज्ञ की व्याख्या

गृहस्थ आश्रम में बसे स्त्री-पुरुषों के लिये राष्ट्र में उत्पन्न हुई प्रत्येक वस्तु की आवश्यकताएँ होती हैं। बिन्दु से सागर तक, राई से लेकर पहाड़ तक, सूई से लेकर कड़ाही तक, घास से लेकर बड़े-बड़े वनस्पतियों तक सभी चीजें तो चाहिये। सब प्रकार के अन्न, सब प्रकार के फल। सभी लोहा, स्वर्णादि धातु। सभी पशु-पक्षी, सब कार्य करने वाले कारीगरी। कृषि उद्योग। सभी कार्यों को अकेला गृहस्थ नहीं कर सकता। उसको सभी का सहयोग चाहिए। परस्पर के सहयोग से घर चलता है। समाज बनता। ग्राम बसते हैं तथा बड़े-बड़े नगर, प्रान्त तथा केन्द्रों का निर्माण होता है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी का आधार भी गृहस्थ है। परन्तु गृहस्थ को ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थों, संन्यासियों के आचार-विचार और सदुपदेशों की भी जरूरत होती है। राष्ट्र बिना समाज, बिना गृहस्थ असमर्थ हो जाता है। इसलिये राष्ट्र को जीवन देने वाले अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, यज्ञ, मन, देवताओं की आराधना तथा औषध किरण, नक्षत्र, जल, दक्षिणा मन्त्रादि की नभ में फैली शक्तियों की समृद्धि की कामनाएं एवं आनन्द, जीवन, ज्योति, बल, स्तुति, कामनाओं की उद्देश्य पू र्त्यर्थ याचना की गई है।

राष्ट्र महत्व

राष्ट्र एव हतो हन्ति राष्ट्रो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्राष्ट्रो न हन्तव्यो मानो राष्ट्र हतोवधीत् ।।

घायल देश सबको मार देता है। रक्षित देश सबकी रक्षा करता है। इसलिये देश को नहीं मारना चाहिये। आहत राष्ट्र हम सबको आहत कर देता है।

गृहस्थ राष्ट्र का प्रवल अंग। राष्ट्र बलवान होगा तो गृहस्थ भी बलवान होगा। राष्ट्र की आत्मा गृहस्थ है। राष्ट्र उसका शरीर है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा निवास करता है। राष्ट्र रूपी शरीर स्वस्थ होगा तो उसमें गृहस्थ रूपी आत्मा भी स्वस्थ रह पायेगा। दूसरे रूप में कहा जाय तो राष्ट्र प्राण के समान है। राष्ट्र रूपी प्राण से गृहस्थ को भी जीवन शक्ति मिलती है। सचमुच राष्ट्र और गृहस्थ का आधाराधेय सम्बन्ध है। राष्ट्र आधार है तो गृहस्थ उसका आधेय है।

गृहस्थ राष्ट्र को कर (टैक्स) देकर सशक्त बनाता है। राष्ट्र की सम्पन्नता, कृषि, उद्योग एवं व्यवसायों से होती है। सभी उद्योग के संचालक गृहस्थ होते हैं। जितने बड़े-बड़े समारोह एवं आयोजन होते हैं। उन सबके लिये गृहस्थ का सबसे बड़ा योग होता है। इसलिये गृहस्थ यही कामना करता है।

जयाहोम की आहुति

ओ३म् चित्तं च स्वाहा । इदं चित्ताय–इदन्न मम ।।१।।

अर्थः—(चित्तम्) चित्त—ज्ञान के आधार हृदय को, "मेरे लिये देवे" ऐसे सम्बन्ध अगले मन्त्र की "प्रायच्छत्" क्रिया को लेकर सर्वत्र कर लेना चाहिये ॥१॥

ओ३म् चित्तिश्च स्वाहा । इदं चित्यै—इदन्न मम ॥२॥

अर्थः—(चित्ति) हृदय की चेतना ॥२॥

ओ३म् आकूतं च स्वाहा । इदमाकूताय—इदन्न मम ॥३॥

अर्थः—(आकूतम्) कर्मेन्द्रियाँ ॥३॥

ओ३म् आकूतिश्च स्वाहा । इदमाकूत्यै—इदन्न मम ॥४॥

अर्थः—(आकूतिः) कर्मेन्द्रियों की प्रेरक शक्ति ॥४॥

ओ३म् विज्ञातञ्च स्वाहा । इदं विज्ञाताय—इदन्न मम ॥५॥

अर्थः—(विज्ञातम्) शिल्पविज्ञान अथवा ज्ञानेन्द्रियां ॥५॥

ओ३म् विज्ञातिश्च स्वाहा । इदं विज्ञात्यै—इदन्न मम ॥६॥

अर्थः—(विज्ञाति) शिल्पविज्ञान शक्ति अथवा ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति ॥६॥

ओ३म् मनश्च स्वाहा । इदं मनसे—इदन्न मम ॥७॥

अर्थः—सुख-दुःख के ज्ञान का भीतरी साधन ॥७॥

ओ३म् शक्वरीश्च स्वाहा । इदं शक्वरीभ्यः-इदन्न मम ।८।

अर्थः—(शक्वरीः) मन की शक्तियां० ॥८॥

ओ३म् दर्शश्च स्वाहा । इदं दर्शाय-इदन्न मम ।९।

अर्थः—(दर्शः) दर्शेष्टि यज्ञ—अमावास्या का योग ॥९॥

ओ३म् पौर्णमासं च स्वाहा । इदं पौर्ण-मासाय-इदन्न मम ।१०।

अर्थः—(पौर्णमासम्) पूर्णिमासम्बन्धी यज्ञ ॥१०॥

ओ३म् बृहच्च स्वाहा । इदं बृहते-इदन्न मम ।११।

अर्थः—(बृहत्) बड़प्पन एवं उच्च बनने की भावना ॥११॥

ओ३म् रथन्तरञ्च स्वाहा । इदं रथन्तराय-इदन्न मम ।१२।

अर्थः—(रथन्तर) साम विशेष तथा शान्त रहने की भावना ।१२।

ओ३म् प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतनाजयेषु तस्मै । विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो बभूव स्वाहा । इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय-इदन्न मम ।१३।

अर्थः—परमात्मा ने यज्ञादि द्वारा मनुष्यों की इष्ट-सिद्धि की वर्षा करने वाले जीव के लिये जय देनेवाले मन्त्रों को अच्छे प्रकार पूर्व से ही दे रक्खा है। जयमन्त्रों के प्रभाव से ही इन्द्र शत्रुओं की सेनाओं को जीतने में प्रचण्ड होता है। जीत के कारण ही सब मनुष्य उसके प्रति अच्छे प्रकार नमस्कार करते हैं, वह जीतने वाला ही प्रचण्ड होता है और वही ग्रहण के योग्य हो चुका है ॥१३॥

जयाहोम की व्याख्या

राष्ट्र अथवा विश्व जय करने वाले मनुष्य को प्रथम स्वात्म पर विजय करनी चाहिये। आत्मा का अर्थ स्व है। स्व का प्रयोग "स्वं जाति धनख्यायाम्" अपनी आत्मा, अपनी जाति, अपने धनादि साधनों के सम्बन्ध में होता है। शरीर आत्मा के संयोग से प्राणी शरीरधारी कहलाते हैं। अतः स्पष्ट है कि शरीरी जीवात्मा का शरीर में रहने वाले अन्तःकरण चतुष्टय और ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों पर एकाधिकार शासन होना चाहियें। उपनिषदों में अलंकारिक प्रकार से दर्शाया गया है—

आत्मानं रथिनं विद्धिः शरीरं रथमेव तु।
इन्द्रियाणि हयान्याहु मनः प्रगहवान्नरः।

उपनिषद् ॥

शरीर रथ रूप है और आत्मा उस शरीर रूपी रथ में बैठने वाला रथी है। जिस शरीर रूपी रथ में इन्द्रियां रूप घोड़े जुते हैं। इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वश में करने वाले मन रूप सारथी पर नियन्त्रण रखने वाला मनुष्य नर कहलाता है।

अतः स्पष्ट है कि आत्मा सबसे पूर्व अपने आपे पर काबू पाए। गीता में योगेश्वर कृष्ण ने उपदेश दिया : —

उद्धरेदात्मनात्मनं　नात्मनमवसादयेत् ।
आत्मैवात्मनोबन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः ॥

गीता ६ । ५

अपने आपे का अपने आपे से उद्धार करें। क्योंकि आत्मा का अपना आपा ही मित्र होता है जो कि संयम से वर्तता है। और आत्मा ही अपने आपेका शत्रु होता है। जो व्यक्ति केवल काम पियासु होता है। अनियन्त्रित अमर्यादित काम भोग भी हानिकारक होता है। "भोगेरोग भयम्" भोग से रोग अनेक-विध व्याधि व्याध बनकर आत्मा को कष्ट देती है। मर्यादित भोग योग कहलाती है। इस प्रकार मर्यादित भोग को युक्त कहा गया है। वह भोग दुःखों को दूर करने वाला होता है।

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्यकर्मसुः ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

गीता ६ । १० ॥

युक्त मर्यादित नियन्त्रित अहार, विहार, कर्म शयन, जागरण को दुःख अपहारक योग कहा गया है गृहस्थ में मर्यादित उपभोग करने वाले शिव-पार्वती, विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सरस्वती, राम-सीता, कृष्ण-रुक्मणि आत्माजयी के साथ विश्वजयी कहलाये।

उनके मर्यादित योग से धवल यश का आज तक जनता स्तुति गान करती है। जयघोष करती है।

जो भी व्यक्ति मर्यादा का अतिक्रमण किसी भी रूप में करता है, व्यवहार करता है, उसको अति कहते हैं। अति सर्वत्र दुःखदायी होती है।

अति रूपेण वै सीता अति गर्वेण रावणः।
अति दानेन बलिर्बद्धः अति सर्वत्र वर्जयेत् ॥

अति सौन्दर्य्य के कारण सीता ने अपहरण के कष्टों को उठाया। अति गर्व से रावण का विनाश हुआ। अति-दान द्वारा बलिराजा कारावासित हुए। अतः अति को छोड़ देवें।

निष्कर्ष—पति-पत्नी को गृहस्थ का उपभोग करना चाहिये परन्तु मर्यादा में। मर्यादा में भोग भी संयम कहलाता है। संयमी व्यक्ति आत्म-विजयी होकर राष्ट्र-विजयी तथा विश्व-विजयी बन जाता है।

अभ्यातन होम की आज्याहुति

ओ३म् अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्यण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदमग्नये भूतानामधिपतये–इदन्न मम ।१।

ओ३म् इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देव-

हूत्यां स्वाहा। इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधि-पतये--इदन्न मम।२। ओ३म् यमः पृथिव्या अधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये--इदन्न मम।३। ओ३म् वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं वायवे, अंतरिक्षस्याधिपतये--इदन्न मम।४। ओ३म् सूर्यो दिवोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये--इदन्न मम।५। ओ३म् चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये--इदन्न मम।६। ओ३म् बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स

मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोऽधिपतये--इदन्न मम ।७। ओ३म् मित्रः सत्यनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्या देवहूत्यां स्वाहा। इदं मित्राय सत्यानामधिपतये--इदन्न मम ।८। ओ३म् वरुणोऽपामधिपतिः। स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्माशिष्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं वरुणायापामधिपतये--इदन्न मम ।९। ओ३म् समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यां पुरोधायाम स्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये–इदन्न मम ।१०। ओ३म् अन्न साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।

इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये-इदन्न मम ।११। ओ३म् सोम ओषधीनामधिपतिः स मात्वस्मिन् ब्रह्मण्यास्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं सोमाय, ओषधीनामधिपतये-इदन्न मम ।१२। ओ३म् सविता प्रसवानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये-इदन्न मम ।१३। ओ३म् रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं रुद्राया पशूनामधिपतये-इदन्न मम ।१४। ओ३म् त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये-इदन्न मम ।१५। ओ३म् विष्णुः पर्वतानामधिपतिः

स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं विष्णवे पर्वतानामधिपतये—इदन्न मम ।१६। ओ३म् मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावन्त्वस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं मरुद्भ्यो गणानाधिपतिभ्यः—इदन्न मम ।१७। ओ३म् पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहा इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यः — इदन्न मम ।१८।

अभ्यातन होम की व्याख्या

अभ्यातन का अर्थ है बहुमुखी उन्नति करना। अभ्यातन के मन्त्रों में विशेषतया छः बातों की ओर विशेष निर्देशन किया गया है। शब्द इस प्रकार है—

१. अस्मिन् ब्रह्मणि २. अस्मिन् क्षत्रे ३. अस्याम् आशीषि ४. अस्यां पुरोधायाम् ५. अस्मिन् कर्मणि ६. अस्याम् देव हूत्याम्। बहुमुखी उन्नति के लिये आवश्यक है कि मनुष्य अपने घर, गांव, प्रान्त, देश और विदेश से भाईचारा स्थापित करे क्योंकि आज के युग में सब देश इतने निकट हैं, जितने कभी किसी गांव से महानगर हुआ करते थे। राष्ट्र की रक्षा करने वालें, संयमित जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ की उदार भावना होनी चाहिये। तभी वह अपनी सभी प्रकार की उन्नति करने में समर्थ हो सकेगा। धरती के किसी भी पृष्ठ पर कहीं पर भी मानव समाज के साथ अपना सामाजिक पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करना बहुत जरूरी है। उसके भरण-पोषण की आवश्यकताओं की पूर्ति इस पद्धति के बिना हो हो नहीं सकती। गृहस्थ के लिए वेद ने निर्देश दिया है— "अस्मिन् ब्रह्मणि।" इस विकास करने वाली शक्ति से वह विकास करें :—ब्रह्म का अर्थ है—जो बढ़े और बढ़ावे। अन्न बढ़ता है, बढ़े अन्न के प्रयोग से शरीर का विकास होता है, शरीर के विकास से ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों में शक्तियों का संचार होता है। विकसित इन्द्रियों की बलवती शक्ति से मन विकसित होकर सशक्त होता है, सशक्त मन से आत्मा ज्ञान-विज्ञान में निरन्तर वृद्धि करता है। अतः गृहस्थ को विकासोन्-मुख प्रकार को अपनाना पड़ता है।

२. गृहस्थ वैभव सम्पन्न हो जाये परन्तु स्वयं रक्षा न कर सके तो सारी सम्पदा विनष्ट होने की सम्भावना सदा बनी रहती है। ब्रह्म को योग कहा गया है। योग अप्राप्त की प्राप्ति कहलाता है और अप्राप्त वस्तु की रक्षा करना ही क्षेम कहलाता है। वेद में अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। "यत्र

ब्रह्मम् च क्षत्रम् च" जहां गृहस्थों में ब्रह्म और क्षत्र शक्ति का संरक्षण होता है, वह गृहस्थ सुखी होता है।

परन्तु गृहस्थ को सदैव अपनी आशाओं का तथा भावनाओं का विस्तार करना चाहिए।

"अस्याम् आशिषि"—की भावनाओं के अनुसार प्रभु से नित्यप्रति प्रार्थना करनी चाहिये कि वह उसकी सभी आशाओं को पूर्ण करे, मनुष्य की शक्ति, बुद्धि, ज्ञान-विज्ञान सीमित हैं। सीमित साधनों से सभी आशाएं, कामनाएँ व भावनाएं मूर्त रूप में परिणत नहीं हो सकती। उस "सर्वकाम-भुक" परमात्मा से नित्यप्रति प्रार्थना करने से आशाओं की सिद्धि साध्य हो जाती है। "अस्यां पुरोधायाम्"—भविष्य की आशाओं के साथ-साथ गृहस्थ के लिये अपेक्षित है कि वह पुरोधायाम् सामने प्रत्यक्ष में प्रस्तुत समस्याओं का समाधान भी नित्यप्रति करते हैं, जो गृहस्थ वर्तमान की प्रत्यक्ष की अवहेलना करता है, उसे भी सफलता नहीं मिलती। गृहस्थ को वर्तमान का निर्माण करके भविष्य के प्रति आशावान होना चाहिये।

"अस्मिन् कर्मणि"—उपरोक्त चार संकल्पों की पूर्ति के लिए गृहस्थ को सदैव कर्मशील, परिश्रमी होना चाहिए, कर्म भी वैसे करने चहिये। जिससे अभीष्ट की सिद्धि होती हो, "इष्टापूर्ति" होती हो, सांसारिक बलों की अपेक्षा वह मानव महामानव बन जाता है, जो नित्यप्रति नियमानुसार "ब्रह्मयज्ञ" करता है क्योंकि सर्वशक्ति का स्रोत ईश्वर के अतिरिक्त संसार में और कोई नहीं हो सकता। ब्रह्मयज्ञ करके मनुष्य कृतज्ञता प्रकट करता है और प्रभु से मार्गदर्शन प्राप्त करता है।

जिन देवों से पंच भौतिक देह बना है और फिर पंचभूतों से निष्पादित अन्नादि से शरीर की पुष्टि तथा वृद्धि होती है। उन पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश की पवित्रता के लिए कर्म करने का नाम 'देवयज्ञ' है। क्योंकि मनुष्य के शरीर में उद्‌भूत दुर्गन्ध से पर्यावरण दूषित होता है, जितना पर्यावरण दूषित गृहस्थी से हो, उसका देव यज्ञ करके नित्यप्रति पवित्र करता रहे।

गृहस्थ में जहां सुख का संसार बसता है, वहां नित्य-प्रति समस्याओं का जंजाल भी फैला करता है। इसलिये इन समस्याओं के समाधानार्थ अनुभवी सिद्ध सन्तों को आमन्त्रित करके समस्याओं का समाधान कराके परिवार के संगठन को बनाये रखें, अभ्यागतों का श्रद्धा से भोजन तथा वस्त्र से सत्कार करता रहे। इसी को "अतिथि यज्ञ" कहते हैं। अतिथियों का सत्कार व सेवा न होने से निराश लौटा अतिथि जन गृहस्थों के पुण्य लेकर अपने पाप उन पर छोड़ जाता है। अतः अतिथि यज्ञ करना भी गृहस्थ के लिए उपादेय है।

गृहस्थ को ऐसे कर्तव्यों को अपनाना चाहिये। जिससे किसी के उपकार के ऋण को अपने कंधों पर न ले सके ईश्वर के पश्चात् यदि मनुष्य के ऊपर दूसरी श्रेणी में उपकार है तो वह माता-पिता के हैं। माता मनुष्य के निर्माण में अपने श्वास में से श्वास बाँट देती है। उपभोग किये अन्न, फलादि के सचिंत रस से बालक के शरीर की पुष्टि करती है। बालक के निर्माण में वह अपने आपको भुला देती है। पिता अपने बालक के निर्माण मे, रक्षा में, भरण-पोषण में, अपने योवन को लगा देता है। ऐसी इन मूर्तियों का उसी प्रकार से सत्कार

करना, जिस प्रकार उन्होंने शैशवास्था में बालक के लिये किया था। वैसा कर्तव्य निभाना ही "पितृ यज्ञ" कहलाता है।

(ङ) मनुष्य के जीवन में पशु-पक्षी भी परम हितैषी सहायक माने जाते हैं। श्वान, काक, चींटी, गौ आदि को प्रथम भोजन समर्पित करके तत्पश्चात् स्वयं आहार करें, जहां उनकी मौन भावनाएं गृहस्थ को आशीर्वाद देंगी, वहां गृहस्थ उनके द्वारा परीक्षित निर्विष अन्नादि का आहार करके स्वास्थ्य लाभ करेंगे। इस श्रेष्ठ कर्म को "बलिवैश्व" यज्ञ कहा गया है।

पांच यज्ञों को करने का श्रेय केवल गृहस्थ को ही है जो यज्ञ करता है, वह स्वर्ग को प्राप्त करता है। इस प्रकार अभ्युत्थान के पांचवें कर्म संकल्प को मूर्तरूप प्राप्त हो सकेगा।

६. "अस्याम् देव हूत्याम्"—ज्ञान-विज्ञान प्राप्तकर्ता वैज्ञानिक जन को देवपुरुष करके पुकारा गया है। गृहस्थ को चाहिये कि ऐसे देव पुरुषों का तन-मन-धन से सत्कार करके उनसे लाभ उठावें, उद्योग धन्धों में उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करें और दोनों लोक का सुख प्राप्त करें, यह परमोत्थान का अन्तिम संकल्प, गृहस्थ को अभ्युत्थान की ओर अग्रसर करेगा। उपरोक्त भावनाओं से अभ्युत्थान होम की क्रियाओं से गृहस्थ को समुत्थान प्राप्त होगा।

विशेष ८ आज्याहुति

वर-कामनाएं

ओ३म् अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयं राजा

वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्रीपौत्रमघन्नरोदात् स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ।१। ओ३म् इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः। अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियं स्वाहा। इद-मग्नये—इदन्न मम ।२। ओ३म् स्वस्तिनोऽग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र। यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रं स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ।३। ओ३म् सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्येह्यजरन्न आयुः। अपैतु मृत्युर-मृतं म आगाद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु स्वाहा। इदं वैवस्वताय-इदन्न मम ।४। ओ३म् परं मृत्यो अनुपरे हि पन्थां यत्र नो अन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्त्स्वाहा। इदं मृत्यवे—इदन्न मम ।५। ओ३म् द्यौस्ते पृष्ठं वायुरूरू अश्विनौ च। स्तनन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वावासस: परिधानाद्

बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः-इदन्न मम।६। ओ३म् मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु। मा त्वं रुदत्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजां सुमनस्यमानां स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम।७। ओ३म् अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यं पाप्मानमुत वा अघम्। शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशं स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम।८।

गृहस्थ मनुष्य की कामनाओं की व्याख्या

१—गृहस्थ मनुष्य प्रभु से पहली प्रार्थना प्रकट करते हुए भावना प्रकट करता है कि गृहस्थ का आधार बालक का जन्म होता है। बालक के जन्म से पूर्व शिशु, माता की पवित्र कोख में ९ मास तक निवास करता है, उस गर्भस्थ बालक के लिये स्त्री पुरुष की यही कामना होती है कि भयानक कष्टप्रद रोग से मुक्त रहें, जिससे गर्भिणी देवी निरापद प्रसवा हो सके।

२—दूसरी कामना गृहस्थ मनुष्य की यह होती है कि वह अपने घर को, उसके वातावरण को, उसके पर्यावरण को गार्हपत्य अग्नि में यज्ञ करता हुआ शुद्ध निरोग रखे, उसकी अर्द्धांगिनी बन्ध्यत्व के पाप से सदैव बची रहे, अपनी पवित्र कुक्षि में वीर सन्तान को धारण करके सन्तति की जननी बने।

३—सद्गृहस्थ की तीसरी कामना होती है कि उसे पुत्र मिले परन्तु वह सर्वगुणसम्पन्न हो। गुण सम्पन्नता ऐसी विचित्र हो कि जन-जन के मन को लुभा सके। पुत्रैषणा की पूर्ति होने से दुनियां भर के ऐश्वर्य भी स्त्री-पुरुष को अच्छे लगते हैं। क्योंकि दोनों के वृद्धत्वकाल में इन्द्रियों के शैथिल्य हो जाने पर, होने वाले कष्टों से तथा नरक से पुत्र ही त्राण करता है। इसलिये प्रत्येक गृहस्थ पुत्रैषणा सम्पन्न होने की कामना करता है।

४—सन्तति प्राप्ति के उपरान्त गृहस्थ चाहता है कि उसका मार्ग सरल, निष्कंटक हो, उसकी अनुव्रत संतान उस मार्ग का अनुसरण कर सके "महाजनो येन गतः सपन्थाः"—मार्ग वही प्रशस्त होता है, जो पूर्वजों, पितृजनों तथा श्रेष्ठजनों के द्वारा अपनाया गया हो।

५—व्यवहार के बाद गृहस्थ कामना करता है, उसके कर्म भी दिव्य जनों से अनुभूत एवं अनुस्यूत रहे हों, जिनको अपनाकर वह इहलौकिक और पारलौकिक सुखों की उपलब्धि प्राप्त कर सके। अपने कर्मों के आधार पर सद्गृहस्थ की आयु अपने आधीन हो जाती है, इसी आधार पर वह मनुष्य महामानव मृत्यु को कह देता है कि अभी तुम दूर रहो, मेरी आयु मेरे शुभ कर्मों के आधार पर मेरे हाथ में है।

६—प्रत्येक गृहस्थ चाहता है कि अपनी गोद में दूध पीते बच्चों को खिलाये, उनके अंग-रज से मैला हो जाने पर भी अपना अहोभाग्य समझे, ऐसे शिशुओं की रक्षा के लिये भी सदैव प्रभु से प्रार्थना करता है कि नवजात शिशु और उसकी प्रस्विनी की रक्षा सब देवजन करें।

७—उत्तम गृहस्थों की यह अभिलाषा होती है कि उसके घरों में हर्ष और आनन्द का वातावरण सदैव बना रहे। हर्ष और उल्लास के आयोजन होते रहें। शुभायोजनों में आगत साधु-सन्तों के उपदेश, उनको सुनने को मिलें। दुख भरी रोने की आवाज उनके कानों में कभी न पड़े।

८—दम्पत्ति सदैव चाहते हैं कि वह निःसन्तान रूपी पाप से और उसके बन्धन से मुक्त होकर स्वतन्त्र होकर पुत्र तथा पौत्रों के साथ सभी परिजनों के सानिध्य में आनन्द सुख का उपभोग कर सकें।

चार साधारण आज्याहुति

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये–इदं न मम। ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे–इदं न मम। ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय–इदं न मम। ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्नि-वाय्वादित्येभ्यः–इदं न मम।

इत्यादि चार मन्त्रों से चार आज्याहुति देवे। ऐसे होम कर के वर आसन से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के सम्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रहकर अपने वामहस्त से वधू का दाहिना हाथ चत्ता धर के ऊपर को उठाना और अपने दक्षिण हाथ से वधू के उठाये हुए दक्षिणहस्तांजलि अंगुष्ठसहित चत्ती ग्रहण कर के वर—

पाणिग्रहण के छः मन्त्र

ओ३म् गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ।१।

ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं ३६ ॥

पकड़ हाथ तेरा मैंने देवी तुमको सौभाग्य दिया है ।
मेरे जीवन साथी बनकर प्रभु ने कल्याण किया है ॥

ओ३म् भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् । त्वमसि धर्मणाऽहं गृहपतिस्तव ।२।

अथर्व० कां० १४ । अ० १ । मं० ५२ ॥

वाजीकर शक्ति पाकर मैं युवा ऐश्वर्य्यवान बना हूँ ।
गुण निधि तुम पत्नी मेरी तो मैं तेरा भगवान बना हूँ ॥

ओ३म् ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वाऽदाद् बृहस्पतिः । मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतम् ।३। अथर्व० कां० १४ । अ० १ । मं० ५३ ॥

हो गया कर्तव्य मेरा, मैं तुम्हारा भरण-पोषण करूँगा ।
प्रभु प्रदत्त देवी का सौ वर्ष तक रक्षक बना रहूँगा ॥

ओ३म् त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभेकं

बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् । तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया ।४।

अथर्व० का० १४ । अ० १ । मं० ५४ ॥

ऋषिगण आदेश दे रहे वस्त्राभूषणों से तुमको सजाऊँ ।
फिर तुमसे सुसन्तान पाकर मैं खुशी के गीत गाऊँ ॥

ओ३म् इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा । बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ।५। अथर्व० का० १४ । अ० १ । मं० ५५ ॥

कामना प्रबल मेरी ईश मुझ पर कृपा हो आपकी ।
सुसन्तान से सम्पन्न कर, शुभ भावना हो आपकी ॥

ओ३म् अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसा कुलायम् । न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ।६। अथर्व० का० १४ । अ० १ । मं० ५६ ।

आचार से पवित्र चरित हो, वपु-सौन्दर्य बढ़ता रहे ।
छल कपट रहित मानसों में प्रेम उमड़ता रहे ॥

पाणिग्रहण की व्याख्या

वैदिक संस्कृति में सामान्य जनों ने पाणिग्रहण को विवाह का पर्यायवाची माना है। पाणिग्रहण प्राय: समगुण कर्म स्वभाव वालें व्यक्तियों में होता है। वर-वधू भी समगुण कर्म स्वभाव होने से उसी कोटि में आते हैं। पति-पत्नी सच्चे सखा मित्र कहलाते हैं। मित्र किसी भी उद्देश्य पूर्ति के लिये या एक दूसरे की सहायता के लिये हाथ को पकड़ते हैं। हाथ का सहारा लेते हैं। इसी भांति इस संदर्भ में वर-वधू से कहता है कि मैं तुम्हारे सौभाग्य के लिये हाथ को ग्रहण या पाणिग्रहण करता हूं। क्योंकि किसी भी स्त्री का सौभाग्य संतति उपलब्धि से होता है और संतान की प्राप्ति बिना श्वसुरकुल के नहीं होती, फिर स्त्री-पुरुष का जोड़ा तो प्रभु ने ही बनाया है। दूसरी बात इस प्रकरण में यह भी कही गयी है कि हाथ ग्रहण करने का अधिकार उसको होता है, जो ऐश्वर्य वाला हो, शिष्ट कमाई से जिसकी गांठ में पैसा हो और शरीर-बल में सूर्य के समान तेजस्वी हो, इस प्रकार का वर अपनी पत्नी को उसके गुणों की याद दिलाते हुए दर्शाता है कि तुम धार्मिक हो, जिसका अभिप्राय है कि तुम गुणों को धारण करने वाली हो, इसलिये गुणी तुम आज से मेरी पत्नी रक्षा करने वाली होगी और मैं तुम्हारे घर का रखवाला।

तीसरी बात पाणिग्रहण के अवसर पर सबसे महान प्रभु ने तुमको मुझे दिया है। अत: मेरा दायित्व हो जाता है कि प्रभु की दी हुई देवी का भरण-पोषण का मैं व्रत लेता हूं। इस व्रत के साथ मैं यह भी विश्वास दिलाता हूं कि मेरे साथ रहते हुए सन्तान को प्राप्त करके १०० वर्ष की आयु प्राप्त करो।

चौथी बात वर कहता है कि देवी जहां अन्नादि से मैं तुम्हारा भरण-पोषण करूंगा, वहां मैं तुम्हारी रुचि के अनुसार वस्त्र तथा आभूषणों से भी तुम्हें सजाऊंगा। तुम्हें सदैव सुखी रखूंगा, ऐसी शास्त्रों में क्रान्तदर्शी ऋषियों की शिक्षा है, उसको निभाऊंगा।

पांचवीं बात निराभिमानी होकर वर कहता है—कि मुझे सदैव ईश्वर पर, विद्वानों पर, आप्तजनों पर विश्वास रहा है। उन सभी के आशीर्वाद से हम इस सांसारिक सुख को प्राप्त करेंगे। परिवार परिवर्द्धन में सभी पितृजनों का सदैव-सदैव आशीर्वाद प्राप्त होता रहेगा। स्वयं वर संयम की ओर भी निर्देश करता है और छठे मन्त्र से कहता है कि हम कुल की वृद्धि करें, केवल सन्तति प्राप्ति हेतु ही कामी बनें। कुल का विस्तार करें, पर इस बात को भी कभी न भूलें कि उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति हेतु श्रम करना, अत्यावश्यक है और श्रम भी इतना करना कि मनुष्य थक जाय, ऐसी अवस्था में भी दुर्व्यसनों का सहारा न लें। दोनों स्त्री-पुरुष मन से भी कोई बात न छिपायें। हमारा सोचने का प्रकार स्पष्ट हो, हमारा व्यवहार छल-कपट से रहित हो, तभी हम पाणिग्रहण के महत्व को समझ सकेंगे।

केवल सूचनार्थ दूसरी परिक्रमा

इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोल के, पश्चात् वधू की हस्ताञ्जलि पकड़ के, उठावे और वह कलश, जो कुण्ड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापन किया था, वही पुरुष जो कलश के पास बैठा था, वर-वधू के साथ-साथ उसी कलश को लेके चले, यज्ञकुण्ड की दोनों प्रदक्षिणा करें, फिर :—

ओ३म् अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहं । सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै । प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून् । ते सन्तु जरदष्टयः सं प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतम् ।७।

अथर्व० का० १४ । अ० २ । मं० ७१ ॥

वर-वधू की प्रतिज्ञा की व्याख्या

गृहस्थ में प्रवेश करने वाले स्त्री पुरुषों को चाहिये कि वे ज्ञानपूर्वक अपना उत्थान करें, उन्नति करें । ऋग्वेद की भांति गुणों के आधार बनें और परस्पर में सामवेद की भांति गुणों का कीर्तन करें । संसार में वाणी का प्रयोग ही वशीकरण कहलाता है । वाणी की मधुरता से मनुष्य दूसरों को भी अपना लेता है और कटु वाणी से अपनों को भी पराया बना देता है । शास्त्रों में कहा है कि यदि संसार को वश में करना चाहते हो तो मनुष्य अपनी वाणी से परनिन्दा न करे ।

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवादसस्येभ्यः गां चरन्तीं निवारय॥
चाणक्य १४/१६

दूसरे स्थान पर राजनीति के धुरन्धर विद्वान्, मनीषी, महर्षि कौटिल्य लिखते हैं—मीठे वचन से पशु भी संतुष्ट हो जाते हैं। इसलिये मीठे वचनों के बोलने में मनुष्य कंजूस क्यों बने।

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेववक्तव्यं वचने का दरिद्रता॥
चाणक्य १६/१७

भवभूति कवि उत्तररामचरित ५-३० पर वर्णन करते हुए कहते हैं कि अच्छी वाणी कामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है। दुष्ट लक्षणों को दूर करती है। यश को फैलाती है। खोटे कर्मों को समाप्त कर देती है। इसलिये धीर-जन इस प्रकार की मधुर वाणी को कल्याण करने वाली माता और कामदुघा धेनु कहते हैं।

हिन्दी साहित्य के आदि कवि गोस्वामी तुलसी दास जी ने तो वाणी-कठोरता को छोड़ मधुर-भाषण को वशीकरण मन्त्र कहा है। "वशीकरण एक मन्त्र है त्यज दे वचन कठोर।"

प्रतिज्ञा के समय वर-वधू यह भी प्रतिज्ञा करते हैं कि हम दायित्व को निभाने के लिये विवाह कर रहे हैं। गृहस्थ के, परिवार के, समाज व राष्ट्र के सारे दायित्वों को गृहस्थ निभाता है 'कर' की कमाई से वह करदाता है। जिससे राष्ट्र सबल होता है, आत्म-निर्भर बनता है।

प्रतिज्ञा में तीसरी बात वर-वधू कहते हैं--राष्ट्र बलवान बनाने के लिये हमें संतान प्राप्त करनी है। संतान धर्म के, रीति-नीति के, सद्गुणों के, वंश-परम्पराओं के विस्तार करने का नाम है।

इन प्रतिज्ञा मन्त्रों से वर प्रतिज्ञा करके, पश्चात् वर, वधू के पीछे रहके वधू के दक्षिण ओर समीप में जा उत्तराभिमुख खड़ा रहके वधू की दक्षिणाञ्जलि अपनी दक्षिणाञ्जलि से पकड़ के दोनों खड़े रहें और वह पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश लेके बैठे। पश्चात् वधू की माता अथवा भाई, जो प्रथम चावल और ज्वार की धाणी (खीलें) जो सूप (छाज) में रक्खी थीं, उसको बायें हाथ में लेके दाहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा के पत्थर की शिला पर चढ़वावे और उस समय वर--

शिलारोहण

ओ३म् आरोहेममश्मानमश्मेव त्वꣳ स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ।1।

पा०ग० का० । १ क० ६ ॥

तुम दृढ़ शिला पर पैर रखो ! तुम व्रतों में दृढ़ रहोगी।
तुम शत्रु दल का दलन कर सदा विजयी बनोगी ।।

शिलारोहण की व्याख्या

पर्वत के पाषाण के एक भाग का नाम अश्म होता है। पर्वतो का दूसरा नाम नग कहा गया है क्योंकि नग का अभिप्राय है, जो हिले, जुले नहीं---अपने आपे में स्थिर रहे। ऊपर से कठोर तो हो परन्तु उस कठोरता में भी जीवन देने की शक्ति निहित होती है। जितने ऊँचे-ऊँचे वनस्पति कठोर पर्वत पर उगते हैं, उतने अन्य कहीं नहीं। औषधियों का जन्मदाता भी पर्वत को ही कहा गया है। इससे मधुर बात यह भी है कि पर्वत जहां कठोर है, वह अन्दर से स्नेह-सरित के जलों से भरा हुआ है। सारी की सारी नदियां उसके अन्तर्हृदय की देन हैं। पर्वतों की उपयोगिता सभी जन जानते हैं। भवनों का निर्माण इसके पत्थरों से होता है। सीमेन्ट पत्थरों का चूर्ण ही तो है, पर्वतों की गोदी में सभी धातुएं प्रभु ने रखी हुई हैं। वैज्ञानिक जन उनसे लाभ उठा पाते हैं। इसलिये वर-वधू को कहता है। अयि ! देवी ? तुम पत्थर पर पैर रखो और पत्थर की तरह से अपने धार्मिक कृत्यों

में, अपने व्रतों में, अपने रीति-नीति में प्रभु-भक्ति, देश-भक्ति, पति-भक्ति में अडिग रहो, तभी हम पाणिग्रहण और प्रतिज्ञा की बातों को सार्थक बना सकेंगे।

कठोर से कठोर और मृदु से मृदु स्वभाव वाले व्यक्तियों से परिचित होकर उनसे लाभ उठाओ और उनकी बुराइयों से बचो। यही शिलारोहण का अभिप्राय है। सामान्यतः हम यह भी समझ लें कि पत्थर उपयोगी वस्तु है, परन्तु उस पर अन्धविश्वास न करें। प्रभु के स्थान पर उसकी मूर्तियां बना कर पूजा न करें। अन्यथा चेतन वैज्ञानिक जन अन्धविश्वास में पड़ कर लाभ उठाने के स्थान पर हानि उठायेंगे इतिहास इस प्रकार की घटनाओं से ओतप्रोत है।

इस मन्त्र को बोले, फिर वधू और वर कुण्ड के समीप आके पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें और यहां वधू दक्षिण ओर रहके अपनी दक्षिण हस्ताञ्जलि को वर की हस्ताञ्जलि पर रक्खे फिर वधू को मां वा भाई, जो बायें हाथ में धाणी का सूप पकड़ के खड़ा रहा हो, वह धाणी का सूप भूमि पर धर अथवा किसी के हाथ में देके, जो वधू वर की एकत्र की हुई अर्थात् नीचे वर की और वधू की हस्ताञ्जलि से दो वार वर-वधू लेके की एकत्र की हुई अञ्जलि में धाणी डाले पश्चात् उसे अञ्जलिस्थ धाणी

पर थोड़ा सा घी सेचन करे, पश्चात् वधू वर की हस्ताञ्जलि सहित अपनी हस्ताञ्जलि को आगे से नमाके—

लाजा होम-मन्त्र कन्या बोले

ओ३म् अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत । स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मापते स्वाहा । इदमर्यम्णे, अग्नये-इदन्न मम ।१।

पार० का० १ । क० ६ ॥

हे प्रभो मैं पूजा करूँ तिहारी मुझे उत्तम वर दे दो।
हटा पितृकुल से मुझको, श्वसुर कुल में शरण दे दो ॥

ओ३म् इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा । इदमग्नये-इदन्न मम ।२।

परा० का० १ । क० ६ ॥

लाजा होम करते प्रभु से विनय यह हमारी ।
दीर्घायु पति होवे फूले पितृकुल की फुलवारी ।

ओ३म् इमान् लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव । मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियᳬ स्वाहा । इदमग्नये-इदन्न मम ।३। पार० का० १ । क० ६ ॥

लाजा की आहुति से पति देव की सदैव समृद्धि होवे ।
परस्पर मिलके दोनों सदा मन, वचन कर्म मे एक होवे ।।

इन उपर के तीन मन्त्रों में एक-एक मन्त्र को वधू बोल एक-एक बार थोड़ी-थोड़ी धाणी की आहुति तीन बार प्रज्वलित इंन्धन पर देवे, फिर वर—

हस्तबन्धन का मन्त्र

ओ३म् सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनी-वति । यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः । यस्यां भूतꣳ समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् । तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ।1।　पार० का १ । क० ७ ।।

सरस्वती वीर प्रसू हे कालत्रयी सृष्टि निर्माता ।
मातृ शक्ति तुमको नत ज्ञानी जन तेरे गीतों को गाता ।।

इस मन्त्र को बोलके अपने दाहिने हाथ की हस्तांजलि से वधू की हस्तांजलि पकड़ के वर—

ओ३म् तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्या वहतु ना सह । पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ।1।　पार० गृ० सू० का० । क० । सू० ३ । ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ३८ ।।

प्रभो ! दोनों हम मिलकर बने दम्पती दिव्य द्युतिमान् ।
दया करो हे ! जगदीश्वर प्राप्त करें तेजस्वी सन्तान ।।

ओ३म् कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीय-मपदीक्षामयष्ट । कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः ।२।

गो० गृ० सू० प्र० २ । का० २ । सू० ८ । मं० ब्रा० १ । २-५ ।

कन्या छोड़ पितृगेह को, श्वसुर-कुल मर्यादा अपनाए ।
विश्व रूप प्लावन में भी सब विघ्न हम दूर भगाए ।।

लाजा होम के पश्चात् इसी परिक्रमा को मङ्गल फेरा भी कहते हैं

इन मन्त्रों को पढ़ यज्ञकुण्ड की एक प्रदक्षिणा करके✲ यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहें और सब मिल के चार परिक्रमा करें, अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में थोड़ा खड़े रहके उक्त रीति से चार बार क्रिया पूरी हुए पश्चात् यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके उसके पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख वधू वर खड़े रहें, पश्चात् वधू की मां अथवा भाई उस सूप को तिरछा करके उसमें बाकी रही हुई धाणी को वधू की हस्तांजलि में डाल देवे, पश्चात् वधू—

✲ शिलारोहण, लाजाहोम तथा परिक्रमा के मन्त्र प्रत्येक फेरे के समय पढ़ने चाहिए—

ओ३म् भगाय स्वाहा। इदं भगाय--इदन्न मम। पार० गृ० सू० का० १। क० ७। सू० ५॥

सारे सम्बन्ध तुझसे मेरे पिता माता भ्रात भगवान।
तेरा वैभव तुझे ही अर्पित करते है ईश ! महान॥

शेषाहुतियां

इस मन्त्र को बोल के प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे पश्चात् वर वधू को दक्षिण भाग में रखके कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के—

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये--इदन्न मम।

परा० गृ० सू० का० १। क० ७। सू० ५॥

इस मन्त्र को बोल के स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे। तत्पश्चात् एकान्त में जाके वधू के बंधे हुए केशों को वर—

चार परिक्रमा (फेरे वा लाओं) की व्याख्या

भारतीय संस्कृति की मर्यादा चार अंकों में विशेषतया निबद्ध हैं। चार दिशायें, चार उपदिशायें मर्यादाओं की सीमाएं हैं। इन्हीं दिशाओं, उपदिशाओं में सारा संसार बसा है। इसलिये गृहस्थ में प्रवेश करने वाले वर-वधू यज्ञ जिसको कि सभी ने शुभ कर्मों का प्रतीक माना है, उस यज्ञ की चार परिक्रमा

करते हुए यह प्रकट करते हैं कि हम भूमण्डल की मर्यादाओं का पालन करेंगे। "यज्ञो भुवनस्य नाभिः।" यज्ञ संसार का केन्द्र स्थान है। केन्द्र के चारों ओर घूमने का अभिप्राय संसार भर की मर्यादाओं की प्रदक्षिणा करना। मानव-समाज की मर्यादाओं को सुरक्षित रखेंगे।

ईश्वर ने भी सृष्टि के आदि में चार ऋषियों को जन्म दिया। चारों ऋषि संसार की सभी विद्याओं के ज्ञाता थे। उन्होंने चार वेदों को संसार के उपकार के लिये आविर्भूत किया।

अग्नि ऋषि ने ऋग्वेद को प्रकट करके विश्व के समक्ष उसमें समस्त पदार्थों के गुणों को निहित कर दिया। दुनियां की समस्त वस्तुओं के गुणों का सबसे प्रथम यदि कहीं वर्णन मिलता है तो वह सृष्टि के आदि में निष्पन्न ऋग्वेद में ही सुप्राप्य है। आज के विचारक भी, तत्ववेत्ता भी, इस बात को अंगीकार करते हैं कि ऋग्वेद सबसे पुराना ज्ञाननिधि ग्रन्थ है।

वायु ऋषि के आत्मा में प्रभु ने यजुर्वेद का ज्ञान दिया, उसको अग्नि ऋषि ने अपने मुखारविन्द से सबको सुनाया। कर्मकाण्ड के सभी विषय यजुर्वेद में वर्णित हैं।

आदित्य ऋषि के द्वारा सर्वज्ञ ईश्वर ने अथर्ववेद को प्रकट किया, जिसमें ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना का विस्तृत वर्णन है। चारों वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं। इन्हीं के द्वारा ज्ञान-विज्ञान आदि का संसार में प्रसार हुआ। चारों ऋषियों के द्वारा यह ज्ञान सुना गया है, इसलिये इनकी पहली संज्ञा-'श्रुति' हुई। परम्परा से लाखों वर्ष तक यह लोग सुनते रहे। इसलिये वेदों को 'आगम' कहकर पुकारा गया। आगम से प्राप्त ज्ञान सार्थक एवं सत्य सिद्ध हुआ। इसलिये जनता ने उसको अंगीकार किया और वेदों को लोग 'आम्नाय' कहकर पुकारने लगे। वेदों को लोग मनन करने लग गये। मनन के आधार पर वेदों को सर्वज्ञान का आधार माना गया। वेद प्रभु की वाणी है। प्रभु नित्य है, इसलिये उसका ज्ञान भी नित्य कहलाया। नित्य ज्ञान पर आधारित शिक्षायें जनता को लाभ देने वाली सत्य सिद्ध हुईं। इसलिये वेद की व्याख्या करते हुए कहा कि वेद ज्ञान सदा रहता है, वह ज्ञान का केन्द्र है, लाभ पहुंचाने वाला है। इन्हीं वेदों के द्वारा चार उपवेदों का निर्माण हुआ, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अथर्ववेद।

वेदों में चार आश्रमों, चार वर्णों के क्रियाकलापों का वर्णन है। इसलिये आज भी ब्रह्मचारी, 'गृहस्थ, वानप्रस्थी, संन्यासी वेदों से निज कर्तव्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के उपयोगी ज्ञान का जितना सुन्दर वर्णन वेदों" में वर्णित है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। चारों वेदों के पारंगत विद्वान् महर्षि वेदव्यास ने समस्त मानव के लिये इस लोक व परलोक की सफलता प्राप्ति हेतु वेदों को चतुष्पदीय निःश्रेणी कहके पुकारा है।

चतुष्पदी हि निश्रेणी ब्रह्मण्येषा प्रतिष्ठिता।
एतामारुह्य निश्रेणीं ब्रह्मलोके महीयते ॥

वेदव्यास

इसलिये गृहस्थ स्त्री-पुरुष वर्णाश्रम व्यवस्था का पालन करें, साधनाओं में सफल हों, उनकी समस्त कामनाएं व भावनाएं सफल हों, इसलिये इस अवसर पर चार परिक्रमाएं की जाती हैं। पुरुष मर्यादाओं का पालन करने से पुरुषोत्तम बनता है। पुरुषोत्तम व्यक्ति संसार का मार्ग-दर्शक होता है। लोक उसका अनुकरण करता है। उसकी कीर्ति यावत् सृष्टि अमर रहती है। उसके गुणों का विश्व गान करता है।

भावावेश में लोग उनकी मूर्तियां बनाकर अपने घर की शोभा बढ़ाते हैं।

लाजा होम की व्याख्या

(१) विवाह में ही लाजा होम यज्ञ किया जाता है। इससे करते हुए वधू पितृ एवं श्वसुर कुल की लाज, प्रतिष्ठा एवं यश की वृद्धि के लिये कहती है कि जिस प्रकार मेरे भाइयों ने मेरे सौभाग्य के लिये मुझे श्वसुर कुल में मेरे पति की गृहिणी बनाकर मेरा मार्ग प्रशस्त किया है, मैं भी प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि प्रभु मेरे भाइयों की वंश वृद्धि करे।

(२) मेरी माता की मेरे अभाव में मेरे भाइयों की पत्नियाँ, उनकी सेवा-सुश्रूषा करती रहें। ऐसी मेरी प्रभु से प्रार्थना है।

(३) जिस प्रकार मेरे भाई मेरे हाथों में लाजा डालते हुए मुझे दृढ़ विश्वास दिला रहे हैं कि बहिन जब भी तुम मेरे पितृ-गृह पर आओगी, हमसे जो भी बन पायेगा, उसको तुम्हें उपहार में सदा देते रहेंगे और इस आदान-प्रदान की प्रक्रिया में हमारी ससुराल से भी हमारी पत्नियों को उपहार में मिलता रहेगा।

(४) वधू के भाई अपने बहनोई को आश्वस्त

करते हैं कि हमारी बहन आप पर भार नहीं बनेगी, जिस प्रकार लाजाओं का भार अनुभव नहीं होता वैसे इसका भार-भार न होकर आपके कार्यों में संभाग और सहभाव होगा।

(५) भाई कहते हैं हमारी अनुजा सदैव लाजाओं की तरह मुस्कराती रहेगी। उसके मुख पर कभी मालिन्य नहीं होगा।

(६) वैदिक परम्पराओं में कन्या का इतिहास लाजाओं के इतिहास से मिलता-जुलता है। लाजा धंशकी धान की वंश वृद्धि, बोये हुए बीज को भूमि में नहीं होती, उस भूमि में अंकुरित बीज को पनीरी कहा जाता है। पनीरी को दूसरे खेत में रोपने पर धान जाति की वंश वृद्धि होती है। उसकी भांति उत्पन्न हुए स्थान वंशमेंकन्या का विकास नहीं होता। पितृकुल रूप भूमि से श्वसुर कुल रूप भूमि में उसका विकास अवश्यम्भावी होता है।

(७) भाई-बहन को इस ओर भी संकेत करते हैं कि यदि पति रूपी हाथ का छिलका तुम्हारी रक्षा करता रहेगा तभी तुम्हारे वंश की वृद्धि हो सकेगी अन्यथा कुल का विकास होना असम्भव होगा। लाजा-

का विकास भी छिलके के बिना नहीं होता, जब तक धान के ऊपर आवरण रूप छिलका रहता है, तभी धान का विकास होता है।

(८) आग जैसी आपदाओं में छिलके के हट जाने पर लाजा धान की वृद्धि नहीं कर सकती। पुरुष के घर में सुविधाओं के अभाव में स्त्री मुरझा जाती है। उसकी मानसिक स्थिति दुःखमय बन जाती है। अतः पुरुष अपनी पत्नी को दुखों से दूर रखे। स्त्रियों की प्रसन्नता पर सारा कुल प्रसन्न एवं शोभायमान रहता है।

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
मनु० अ० ३। ३२

पुरुष भी पत्नी का प्रसाधन करे

ओ३म् प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टांत्त्वा सह पत्या दधामि ।१। ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० २४॥

ओ३म् प्रेतो मुंचामि नामुतस्सुबद्धाम-मुतस्करम्। यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा

सति ।२।   ऋग्० मं० १०। सू० ८५। मं० २५॥

ब्रह्मचर्य्य समय से इस धूसर सूखे जूड़े को।
खोल साफ कर कंघी से तेल सजा बान्धू जूड़े को॥

केशों के प्रसाधन की व्याख्या

(१) स्त्री-पुरुष का स्वाभाविक सौन्दर्य ईश्वर प्रदत्त होता है। उस सौन्दर्य को देशकाल एवं ऋतुएं तथा आहार भी कमी करने वाले हो जाते हैं। उसमें कभी-कभी कुरूपता भी उत्पन्न होने लग जाती है। शरीर काला अथवा पीला हो जाता है। यह परिवर्तन न हो पाए, इसलिए स्त्री-पुरुष उबटना और तैल आदि उपकरणों को अपनाते हैं। स्त्री प्रायः पुरुष को अलंकृत करने के लिए सदैव सजग रहती है। परन्तु वेद में पुरुष को भी प्रेरणा दी है, कि वह भी स्त्री के प्रसाधन में सहयोग दे। ब्रह्मचर्य काल में स्त्री का जूड़ा भली प्रकार से बंधा नहीं होता था। न ही उसके सजाने की प्रक्रिया अपनाई जाती थी। पति अपनी पत्नि को सुन्दर बनाने के लिए शरीर के सबसे उत्तम भाग पर स्थित बन्धे जूड़े को खोल कर कंघी से एक-एक बाल को साफ करके सुगन्धित फूलों के गजरों से उसे बान्धता है।

(२) पति स्त्री के सौभाग्य के लिए और स्वास्थ्य के लिए मांग में सिन्दूर भर कर सुमंगली बनाता है। सिन्दूर जहाँ कीटाणुनाशक है, वहाँ फोड़े-फुन्सियों को भी नहीं निकलने देता। इस प्रक्रिया से स्त्रियों का सिर शुद्ध, पवित्र और नीरोग रहता है। भोजन आदि बनाते हुए उनका हाथ सिर पर नहीं जाता जिससे भोजनादि में बाल नहीं गिरते।

(३) सिन्दूर से भरी माँग जहाँ सौभाग्य का चिन्ह है, वहाँ सौभाग्य के लिए सन्तान का होना भी परम आवश्यक होता है। रोग रहित स्वास्थ्य उपलब्धि से सौन्दर्य बढ़ता है और प्रसाधन से सौन्दर्य बहुत-बहुत निखर उठता है। जिससे स्त्री-पुरुषों के मनों में आकर्षण पैदा होता है। परस्पर आकर्षण से सन्तति की इच्छा होती है। इच्छा शक्ति भावनाओं को जन्म देती है। भावनाएं कामनाओं को सफल करती हैं। परम अभिलक्षित कामनाएं संतति को जन्म देती हैं। संतति पति-पत्नी के लिए आमोद-प्रमोद, आनन्द और हर्ष को परिवर्धित करती है। जिस घर में आमोद-प्रमोद दृष्टिगोचर होता है। उसके साथ-साथ धन, वैभव, सम्पत्ति, विभूति, समृद्धि

आविर्भूत होती है। इनके द्वारा पुरुष सौभाग्यशाली और स्त्री सुमंगली बन जाती है।

ग्रन्थी बन्धन तथा सप्तपदी

इन दोनों मन्त्रों को बोल के वधू के केश छोड़े तत्पश्चात् सभामण्डप में आके सप्तपदी विधि का आरम्भ करे। इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देनी, इसे जोड़ा कहते हैं। वधू वर दोनों जने आसन पर से उठ के वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्तांजलि पकड़ के यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जावें तत्पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्ध पर रख के दोनों समीप-समीप उत्तराभिमुख खड़े रहें। तत्पश्चात् वर :—

ओ३म् मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम।

गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० २। सू० १३॥

ऐसा बोल के वधू को उसका दक्षिण पग उठवा के चलने के लिये आज्ञा देवे और—

ओ३म् इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः। पार० का० १। क० ८॥

इस मन्त्र को बोल के वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान दिशा में एक पग चले और चलावे।

ओ३म् ऊर्जे द्विपदी भव सा मामनुव्रता

भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।　　इस मन्त्र से दूसरा पग।

ओ३म् रायस्पोषाय त्रिपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।

इस मन्त्र से तीसरा पग।

ओ३म् मयोभवाय चतुष्पदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।

इस मन्त्र से चौथा पग।

ओ३म् प्रजाभ्यः पंचपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।　　मन्त्र से पांचवां पग।

ओ३म् ऋतुभ्यः षट्पदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः। इस मन्त्र से छठा पग और—

ओ३म् सखे सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः।　　पार० का० । १ क० ८॥

इस मन्त्र से सतवां पग चलना।

सप्तपदी की व्याख्या

सप्तलोकों और सात समुद्रों से परिवेष्टित पृथिवी पर बसी सुनहली दुनियां में रहने वाले व्यक्ति अपने महत्त्व को सात कदम चल कर परिपक्व मानते हैं—"सतां मैत्री सप्तपदिनी भवति"। सात कदम स्त्री-पुरुष का साथ चलना तभी पूरा हो सकता है जबकि उनकी कामनाएं भी परिपूर्ण हो जाये।

(१) वर-वधू से कहता है कि देवी मेरे साथ तुम्हारा प्रथम चरण का मेरे घर में प्रवेश अन्न की पूर्ति करने वाला हो, क्योंकि अन्न शरीर का आधार है। पार्थिव शरीर में अन्न का बहुत बड़ा महत्व है। अन्न के बिना मनुष्य प्राणधारण नहीं कर सकता। अन्न सेवन से शरीर प्राणधारक बना रहता है।

(२) अन्न की पूर्ति के बाद आवश्यक है कि शरीर में बल हो। इसलिए दूसरा पग उठाते हुए वर-वधू के साथ कामना करता है कि हमारे शरीरों में बल की वृद्धि हो। बलों में शारीरिक बल, मानसिक बल, आत्मिक बल, पारिवारिक बल, सामाजिक बल एवं राष्ट्रीय बल अपेक्षित है।

(३) वर-वधू के साथ तीसरा चरण रखते हुए

कामना करता है कि गांठ में पैसा भी होना चाहिए। धन के बिना सांसारिक व्यवहार नहीं चल सकते।

(४) वर-वधू के साथ चौथा चरण बढ़ाते हुए स्त्री से कहता है। ऐ देवी! हम धन से सांसारिक सुखों को प्राप्त करने वाले व्यक्ति बनें। सांसारिक सुख के लिए जितने भी प्राचीन-अर्वाचीन साधनों से प्राप्त सामग्री संग्रह करके अथवा आविष्कृत करके हम दोनों, हमारी संतान, हमारा परिवार, समाज और राष्ट्र सुखी हो सकेगा। हम आनन्द का जीवन बिताने वाले बन सकेंगे।

(५) पति-पत्नी से कहता है कि हमारे पास अन्न भी हो, बल भी हो और सुख भी हो परन्तु यदि संतान न हो तो घर की फुलवारी में सुगन्ध नहीं आयेगी। ये सारी बातें सुगन्धहीन पुष्पवत् निस्सार होगी। क्योंकि पुत्र को बुढ़ापे की लाठी कहा गया है। पूर्ण आयु प्राप्ति के लिए संतान परम सहायक होती है।

(६) दम्पती छठे चरण को आगे बढ़ाते हुए कामना करती है कि हम ऋतुओं के अनुसार अन्नादि का उपभोग करें और वस्त्रों का उपयोग करें। जिससे

हमारा जीवन सुरक्षित रह सके। आधि-व्याधि से बच सकें। नीरोग जीवन के लिए ऋतु अनुसार जीवनचर्य्या परम आवश्यक होती है।

(७) उपरोक्त छः उपलब्धियों के होने पर भी संसार यात्रा सफल नहीं होती। जब तक मित्रों की संप्राप्ति नहीं होती। स्त्री-पुरुषों का जीवन सहेलियों और मित्रों के अभाव में नीरस और कठोर बन जाता है। इसलिए जो बात माता-पिता व सम्बन्धियों के समक्ष नहीं कर सकता। वह स्वाभाविक तौर से स्त्री सहेलियों के प्रति, पुरुष मित्रों के प्रति प्रकट करके शान्ति प्राप्त करते हैं। मित्र अथवा सहेली अपने मित्रो और सहेलियों को बुराइयों से बचाने के लिए यत्न करते हैं। अच्छे कार्यों को करने के लिए प्रेरित करते हैं।

इसलिए सप्तपदी से विवाह परिपूर्ण होता है। सप्तपदी विवाह की पूर्व प्रक्रियाओं को पूर्ण करती है। इसलिए विवाह में सप्तपदी का मूल्य आंका गया है।

इस रीति से इन सात मन्त्रों से सात पग ईशान दिशा में चला के वधू वर दोनों गांठ बंधे हुए शुभासन पर बैठें। तत्पश्चात् प्रथम से जो दो व्यक्ति जल के कलश और दण्ड

को लेके यज्ञकुण्ड की दक्षिण की ओर बैठाया था, वह पुरुष उस पूर्वस्थापित जलकुम्भ को लेके वधू वर के समीप आवे और उसमें थोड़ा-सा जल लेके वर वधू के मस्तक पर छिटकावे और वर—

मस्तक पर जल के छींटे देना

ओ३म् आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ।1। ओ३म् यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ।2। ओ३म् तस्माऽअरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ।3। ओ३म् आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ।4।

मंगलकारी सुखदाता हे जल! जीवनदाता।
पिपासादि रोग विनाशक हे परम शान्ति प्रदाता॥

जल के छींटें देने की व्याख्या

(१) बारात में आए हुए वृद्धजन जल के छींटें देकर यह संकेत दे रहे हैं कि कभी तुम दोनों का मनमुटाव हो जाए तो उसे लम्बा न खींचना, गम्भीर न बनाना, गुस्से में नहीं आना, उतावले पन में एक

दूसरे के तथा उनके परिवारजनों पर छींटा-कशी मत करना। जल की भाँति शान्ति से काम लेना अगर फिर भी किसी समस्या का समाधान न हो पाए तो शान्त भाव से हमें बता देना तो हम दोनों को समझा कर, दोनों की समस्याओं का समाधान कर सकेंगे।

(२) वृद्धजनों का कहना है कि घर के कार्यों में शान्ति सुखदायनी होती है, जल जहाँ शान्तिदायक है, वहाँ वह पवित्र भी है, उसी तरह से तुम दोनों भी मन से, वचन से, कर्म से निष्कपट बनो, निष्छल रहो और तुम्हारे से कोई भी पाप नहीं हो सकेगा। जल जिस प्रकार वस्त्रादि को धो कर निर्मल बना देता है, पवित्र बना देता है, वैसे ही तुम भी अपने परिवार, समाज और राष्ट्र को पवित्र, कल्याणकारी तथा सुन्दर बना सकोगे, तुम्हारे घर में शान्ति और पवित्रता सदा-सदा रहेगी।

(३) जल में संगठन की शक्ति है, पितृजन संकेत करके कह रहे हैं, तुम जल की भांति पवित्र रहकर संगठित रहना। अपने पारिवारिक जनों को मिला कर रहना, जोड़कर रखना, इसी में तुम्हारा कल्याण होगा,

घर को स्वर्ग बना सकोगे, स्वर्ग के सुख का उपभोग करोगे। यही भावना है जल से छींटे देने की।

इन चार मन्त्रों को बोले। तत्पश्चात् वर वहां से उठ के—

सूर्य्यावलोकन

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ य० अ० ३६। मं० २४॥

उदय-अस्त में यथा सूर्य भासता एक समान।
सम्पद्-विपद में तथा वर-वधू रहे कान्तिमान ॥

इस मन्त्र को पढ़ कर सूर्य अवलोकन करें।

सूर्य दर्शन की व्याख्या

(१) भारतवासियों में सूर्य दर्शन को बहुत महत्त्व दिया गया है। प्रातःकाल के सूर्य दर्शन करने से आँखों की ज्योति में वृद्धि होती है। योगीजन सूर्य के दर्शन करते हुए त्राटक सिद्धि को प्राप्त करते हैं। जितने भी रंगों का आविष्कार हुआ, वह सूर्य की किरणों के द्वारा हुआ। इसीलिए दुनियां सुन्दर लगती है। मनमोहिनी बन जाती है।

(२) सूर्य की गर्मी से सारे वनस्पति जगत का जन्म होता है। धरती माता की गोदी में बोए गए बीज सूर्य की ऊष्णता से ही अंकुरित होते हैं।

(३) विशेषकर भारत में छः ऋतुएँ होती हैं। ऋतुओं के निर्माण में सूर्य का सबसे बड़ा सहयोग है। वर्षा ऋतु से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य समुद्र के पानी से मानसून को बनाता है। और वह मानसून ठण्डक को प्राप्त कर बरस जाते हैं।

(४) सूर्य प्रकाश देता है, उसके प्रकाश में मानव जगत अपने कारोबार को करता है और उसके अस्त हो जाने पर विश्राम करता है।

(५) सूर्य का विशेष गुण यह है कि जब यह उदित होता है तो इसके मण्डल के चारों ओर अरुणिमा रहती है। वैसे ही अस्त होते समय भी सूर्य अरुणिमा से लाल होता है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार इसकी स्थिति उदय हुए होती है वैसी ही अस्त समय में भी होती है।

(६) गृहस्थ में प्रवेश करते हुए वर वधू को सूर्य दर्शन करने के लिए कहता है। अभिप्राय यह है कि तुम मेरी दुनियां को सूर्य की भाँति सुन्दर, आर्कषक बनाओ, आनन्द देनी वाली बनाओ।

(७) वर वधू को शिक्षा देता है कि सूर्य दर्शन करके तुम धरती के समान बन जाओ और मुझे सूर्य की भाँति तेजस्वी बनाए रखो, हमारा आचरण सूर्य और धरती की तरह से बनें।

(८) पति पत्नी से कहता है कि सूर्य की बनाई छः ऋतुओं के अनुसार हम अपने जीवन में भोजन, आच्छादन द्वारा रक्षा, वृद्धि, समृद्धि को प्राप्त करें।

(९) सूर्य की भाँति गृहस्थियों को अपनी अनुगामी सन्तान को ज्ञान रूपी प्रकाश देना चाहिए, ज्ञान के प्रकाश में वे शारीरिक, मानसिक और भौतिक उन्नति कर सकें।

(१०) सूर्य के दर्शन करते हुए गृहस्थ स्त्री-पुरुष एक रस रहें, एक जैसी स्थिति में रहें, सुख में अभिमान न करें और दुःख में दुखी न होवें। यही सूर्य के दर्शन करने का महत्त्व है।

उदेति सविता रक्तस्तथैवास्तमेति च।
सम्पत्तौ विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥

तत्पश्चात् वर वधू के दक्षिण स्कन्ध पर से अपना दक्षिण हाथ से वधू का हृदय स्पर्श करके—

ओ३म् ममव्रते ते हृदयं दधामि मम

चित्तमनु चित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्टवा नियनक्तु मह्यम् ॥

पति-पत्नी मन वचन कर्म में एक हों।
व्यवहार में धर्माचरण में भी नेक हों॥

इस मन्त्र को बोले और वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके उक्त मन्त्र को बोले—

ओ३म् लेखासन्धिषु पक्ष्मस्वारोकेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा। इदं कन्यायै—इदन्न मम।१। ओ३म् केशेषु यच्च पापकमोक्षिते रुदिते च यत्।तानि०।२। ओ३म् शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत्। तानि०।३। ओ३म् आरोकेषु च दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्। तानि०।४। ओ३म् ऊर्वोरुपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते। तानि०।५। ओ३म् यानिकानि च घोराणि सर्वांगेषु तवाभवन्। पूर्णाऽऽहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा।६। इदं कन्यायै, इदन्न मम।

सा० मं० ब्रा० प्र० १। ख० ३। मं० १-६॥

मैं अंगों के साध्य असाध्य सब रोगों का शमन करूँ।
स्वस्थ कुशल देवी से सदा अलंकृत निज सदन करूँ॥

ये छः मन्त्र हैं, इनमें से एक-एक से छः आज्याहुति देनी फिर—

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा।

इत्यादि चार व्याहृति मन्त्रों से चार आज्याहुति देके वधू वर वहां से उठके सभामण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें, तत्पश्चात् वर—

ध्रुव तथा अरुन्धती दर्शन

ध्रुवं पश्य।

वैज्ञानिकों भी को ध्रुव ध्रुव, रहकर है मार्ग दर्शाता।
यह युगल अनुजजनों को रहे सदा सुमार्ग दिखाता॥

ऐसा बोल के वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे और वधू वर से बोले कि मैं—

पश्यामि।

तत्पश्चात् वधू—

ओ३म् ध्रुवमसि ध्रुवाऽहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य असौ)

गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ३। सू० ६।

अटल ध्रुव सा जीवन में हम ध्रुव धर्म धरें।
अरुन्धती की भांति पत्नी पति के सुसान्निध्य रहे॥

इस मन्त्र को बोल के तत्पश्चात्—

अरुन्धतीं पश्य।

ऐसा वाक्य बोल के वर को अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू—

पश्यामि । ऐसा कह के—

ओ३म् अरुन्धत्यसि रुद्धाऽहमस्मि (अमुष्य, असौ)

इस मन्त्र को वधू बोल के वर वधू की ओर देखके और वधू के मस्तक पर हाथ धर के—

ओ३म् ध्रुवा द्यौ ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् । ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् । ओ३म् ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्यं त्वाऽदात् । बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम् ।

इन दोनों मन्त्रों को बोले, पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञ-कुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख होके कुण्ड के समीप बैठें और पूर्वोक्त—

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।

विशेष भात का होम

इत्यादि तीन मन्त्रों से तीन-तीन आचमन दोनों करें पश्चात् समिधाओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त करके घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावें "ओम् अयन्त इध्म०" इत्यादि चार मन्त्रों से समिधा होम दोनों जने

करके पश्चात् आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार दोनों मिलके आठ आज्याहुति, वर-वधू देवें फिर जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात है, उसको एक पात्र में निकाल के उसके ऊपर स्रुवा से घृत सेचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिलाकर दक्षिण हाथ से थोड़ा-थोड़ा भात दोनों जने लेके।

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये–इदन्न मम ।१। ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये–इदन्न मम ।२। ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः–इदन्न मम ।३। ओ३म् अनुमतये स्वाहा। इदमनुमतये–इदन्न मम ।४।

इसमें से प्रत्येक मन्त्र से एक-एक करके चार स्थालीपाक अर्थात् भात की आहुति देनी फिर (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति देनी, फिर व्याहृति आहुति चार और सामान्य प्रकरणोक्त अष्टाज्याहुति दोनों मिल के आज्याहुति देनी, फिर शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल उस पर घृत सेचन कर और दक्षिण हाथ में रखके—

ध्रुव और अरुन्धती दर्शन की व्याख्या :–

(१) ध्रुव का विशेष महत्व यह है कि वह अपने स्थान पर रहता है, इधर-उधर विचलित नहीं होता। संसार में प्रायः इस धरती पर रहने वाले सभी मनुष्य उसकी एक स्थिति से परिचित हैं। वैज्ञानिक लोग विशेषकर वायुयान एवं जलपोत

को चलाने वाले इन्जीनियर सदैव इसकी ओर रहने वाले कुतुबनुमा यन्त्र से दिशाओं का निर्धारण करते हैं, तब वह अपने लक्षित स्थान को प्राप्त करते हैं।

(२) वर वधू को निर्देश देता है कि ध्रुव के दर्शन करो और उसके दर्शन करके अपने जीवन को स्थिर बनाओ, अपने व्रतों में स्थिर रहो, अपने धर्म में दृढ़ रहो, इस प्रक्रिया से हमारे पीछे आने वाले अनुजन अपने मार्ग को प्रशस्त बना सकेंगे। तुम हमारी तरह से व्रतों में, नियमों में, किसी की आज्ञा पालन करने में, धार्मिक मर्यादाओं में दृढ़ स्थिति प्राप्त कर सकोगे।

(३) सदैव ध्रुव के निकट अरुन्धती नक्षत्र रहता है आर्कषण और प्रकाश में एक दूसरे के परम सहायक होते हैं। देवी को अरुन्धती के दर्शन कराकर वर की यही अकांक्षा है कि हम दोनों जीवन पर्यन्त एक दूसरे से निकट रहें, एक दूसरे के सहायक रहें, कभी हम दोनों एक दूसरे से पृथक् न हों, तभी हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगें, अपने उद्देश्यों में सफल हो सकेगें, गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि वे स्थिर रहेगें अपने उद्देश्य में, अपने संकल्प में, अपनी भावनाओं में, तभी उनकी कामनाएँ पूर्ण होंगी।

ओ३म् अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना। बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते।१। ओ३म् यदेतद् हृदयं तव तदस्तु हृदयं मम। यदिदꣳहृदयं मम तदस्तु हृदयं तव।२। ओ३म् अन्नं प्राणस्य षड्विंशस्तेन बध्नामि त्वा असौ।३।

पवित्र अन्न से बनता शिव संकल्प भद्र मन।
एक मना दम्पती से सुशोभित होता है सदन।।

तत्पश्चात् वर-वधू के मस्तक पर हाथ रख कर और सिन्दूर से मांग भर कर, इस मंत्र को बोले—

ओ३म् सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन।　ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ३३।

अर्थः—हे विद्वानो! यह वधू मङ्गलस्वरूप है, इसको मङ्गल-दृष्टि से देखो और इसके लिये सौभाग्य का आशीर्वाद देकर अपने-अपने घर के प्रति जा सकते हो और विशेष रूप से पराङ्मुख होकर न जाओ, किन्तु पुत्रादि के मङ्गल की आशा से फिर भी आने के लिये जाओ।

इस मन्त्र को बोले और आए हुए लोग—

ओ३म् सौभाग्यमस्तु, ओ३म् शुभं भवतु।

अर्थः ईश्वर करे कि सौभाग्य हो और कल्याण हो।

इस प्रकार आशीर्वाद देवें।

विशेष—विवाह-स्थल पर पूर्णाहुति न करके वर अपने घर पर पुरोहित द्वारा यज्ञ करें और यज्ञ समाप्त करके जो "ग्रन्थिबन्धन" विवाह संस्कार में किया गया था, वह ग्रन्थि-बन्धन पुरोहित खोल कर वर-वधू को आशीर्वाद दे। यहाँ पूर्णाहुति देकर यज्ञ पूर्ण करें।

यज्ञ-प्रार्थना

पूजनीय प्रभो ! हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल-कपट को मानसिक बल दीजिए ॥
वेद की बोलें ऋचायें सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे शोक-सागर से तरें ॥
अश्वमेधादिक रचायें यज्ञ पर-उपकार को।
धर्म मर्यादा चला कर लाभ दें संसार को ॥
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोगपीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें ॥
भावना मिट जाय मन से पाप अत्याचार की।
कामनाएं पूर्ण होवें यज्ञ से नर-नार की ॥
लाभकारी हो हवन हर जीवधारी के लिए।
वायु जल सर्वत्र हों शुभ गन्ध को धारण किए ॥
स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम पथ विस्तार हो।
इदन्न मम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ॥
प्रेमरस में तृप्त होकर वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणा रूप करुणा आपकी सब पर रहे ॥

[भजन]

आज मिल सब गीत गाओ उस प्रभु के धन्यवाद।
जिसका यश नित गाते हैं गन्धर्व मुनिजन धन्यवाद ॥
मन्दिरों में, कन्दरों में, पर्वतों के शिखर पर।
देते हैं लगातार सौ-सौ बार मुनिवर धन्यवाद ॥
करते हैं जंगल में मंगल पक्षिगण हर शाख पर।
पाते हैं आनन्द मिल गाते हैं स्वर भर धन्यवाद ॥

कूप में, तालाब में, सिन्धु की गहरी धार में।
प्रेम-रस में तृप्त हो करते हैं जलचर धन्यवाद ॥
शादियों में, कीर्तनों में यज्ञ और उत्सव के आदि।
मीठें स्वर में चाहिये करें नारी-नर सब धन्यवाद ॥
गान कर 'अमीचन्द' भजनानन्द ईश्वर स्तुति।
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता, कान धर-धर धन्यवाद ॥

आरती

ओ३म् जय जगदीश हरे, पिता जय जगदीश हरे
भक्त जनन के संकट, क्षण में दूर करें ॥१॥
जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनशे मन का।
सुख-सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥२॥
मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किस की।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ मैं जिस की ॥३॥
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तरयामी।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी ॥४॥
तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्त्ता।
दीन दयालु कृपालु, कृपा करो भर्त्ता ॥५॥
तुम हो एक अगोचर, सब के प्राणपति।
किस विध मिलूँ दयामय, मुझ को दो सुमति ॥६॥
दीनबन्धु दुःखहर्त्ता, तुम रक्षक मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे ॥७॥
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥८॥

वैदिक संस्कृति के पोषक श्री प्रो0 महेन्द्र कुमार जी शास्त्री प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री, राष्ट् एवं धर्मपरायण समाजसेवी व्यक्ति हैं । आपका अपना सम्पूर्ण जीवन जन- कल्याण हेतु समर्पित है । उसी अनुभव के आधार पर आपने "पितृशतकम्" नामक खण्ड-काव्य लिखकर पुत्र-पुत्रियों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया । इस प्रकार बुद्धि-बिलास हेतु आप यदा-कदा लिख कर अपने मनोभावों को प्रकट कर रहे हैं । "जीवेम शरदः शतात्" इस प्रकार आप जन-कल्याण में सदा व्यस्त रहें ।

-सच्चिदानन्द शास्त्री